इन्स्टालमेण्ट

भगवती चरण वर्मा

लीडर प्रेस, प्रयाग ।

प्रकाशक और मुद्रक :—
कृष्णाराम मेहता,
लीडर प्रेस, प्रयाग।

मूल्य एक रुपया

१९३६
प्रथमावृत्ति १०००

'प्रेजेन्ट्स' कहानीवाली श्रीमती शशिबाला देवी को इन कहानियों के लेखक की एक सौ चौदहवीं भेंट।

दो शब्द

चार जवान, के-तिरछे, पाँचो कपड़े पहिने और पाँचो हथियारों से लैस, अरबी घोड़ों पर सवार एक गाँव से गुज़र रहे थे। उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे एक बड़े मियाँ, दुबले-पतले, बने-ठने, एक गधे पर सवार। गाँववाले सड़क पर इकट्ठा हुए, उन सवारों को देखने के लिए। कौतूहल बढ़ा, और किसी गाँव-वाले ने पूछ ही तो दिया, "ये सवार कहाँ जा रहे हैं?" इस सवाल का पूछा जाना था कि बड़े मियाँ का तपाक के साथ जवाब देना था, "हम पाँचो सवार दिल्ली जा रहे हैं।"

लोग मुझे पाँचवाँ सवार भले ही समझ लें, पर मैं तो कहूँगा, और ज़ोर देकर कहूँगा कि मैं भी कलाकार हूँ। इन पन्द्रह कहानियों को आप पढ़ें, पढ़ने लायक़ हैं; और मैं आपसे कहता हूँ कि आजकल पढ़ी जाने लायक़ चीज़ें प्रायः लिखी ही नहीं जातीं।

अच्छा! अब आप से कुछ तथ्य की बातें भी कह दूँ। 'क्या लिखा जाता है और क्यों लिखा जाता है?' किसी भी कलाकार की कृति को पढ़ने के समय ऐसे प्रश्नों को उठाना कलाकार के साथ ही नहीं वरन् कला के साथ अन्याय करना है। आप लोगों को देखना चाहिये, 'किस तरह लिखा जाता है?' और यहीं कलाकार की सफलता है।

एक बात और भी कहनी ही पड़ गई। मेरे कुछ मित्रों ने मेरी इन कहानियों में कहीं-कहीं 'अश्लीलता' और कहीं-कहीं 'नैतिकता का अभाव' नाम की दो चीज़ों को ढूँढ़ निकालने का कष्ट उठाया है। मेरे उन मित्रों का अनुकरण आप लोगों में भी कुछ सज्जन कर सकते हैं। इस विषय में मुझे केवल इतना कहना है कि संसार में 'अश्लीलता' नाम की कोई चोज़ है भी, इस पर मुझे शक है। रही नैतिकता की बात, वहाँ मनुष्य का अपना निजी दृष्टि-कोण है। अगर आपको अधिकार है कि आप मुझे ग़लती पर समझें, तो मुझे भी यह अधिकार प्राप्त है कि मैं आपको ग़लती पर समझूँ।

१६ पार्क रोड,
एलाहाबाद २६–१२–'३५

—भगवती चरण वर्मा

क्रम

प्रेज़ेन्ट्स

हम लोगों का ध्यान अपनी सोने की अँगूठी की ओर, जिस पर मीने के काम में 'श्याम' लिखा था, आकर्षित करते हुए देवेन्द्र ने कहा, "मेरे मित्र श्यामनाथ ने यह अँगूठी मुझे प्रेज़ेन्ट की। जिस समय उसने यह अँगूठी प्रेज़ेन्ट की थी उसने कहा था कि मैं इसे सदा पहिने रहूँ, जिससे कि वह सदा मेरे ध्यान में रहे।"

परमेश्वरी ने कुछ देर तक उस अँगूठी की ओर देखा, इसके बाद वह मुसकराया। "प्रेज़ेन्ट्स की बात उठी है तो मैं आप लोगों को एक विचित्र, मजेदार और सच्ची कहानी सुना सकता हूँ। यक़ीन करना या न यक़ीन करना आप लोगों का काम है, मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। मैं तो केवल यह जानता हूँ कि यह बात सच है क्योंकि इस कहानी में मेरा भी हाथ है। अगर आप लोगों को कोई जल्दी न हो तो सुनाऊं।"

चाय तैयार हो रही थी, हम सब लोगों ने एक स्वर में कहा, "जल्दी कैसी? सुनाओ।"

परमेश्वरी ने आरम्भ किया।

दो साल पहिले की बात है। अपनी कम्पनी का ब्रांच-मैनेजर होकर मैं दिल्ली गया था। मेरे बँगले के बग़ल में एक काटेज थी जिसमें एक महिला रहती थीं। उनका नाम श्रीमती शशिबाला देवी था। वे ग्रेजुएट थीं और किसी

गर्ल्स्-स्कूल में प्रधान अध्यापिका थीं। सन्ध्या के समय जब मैं टहलने के लिए जाया करता था तो श्रीमती शशिबाला देवी प्रायः टहलती हुई दिखाई देती थीं। हम लोग एक दूसरे को देखते थे, पर परिचय न होने के कारण बातचीत न हो पाती थी।

एक दिन मैं टहलने के लिए नज़दीक के पार्क में गया। वहाँ जाकर देखा कि श्रीमती शशिबाला देवी एक फ़ौव्वारे के पास खड़ी हैं। उन्होंने भी मुझे देखा और वैसे ही वे वहाँ से चल दीं। श्रीमती शशिबाला देवी मंथर गति से टहलती हुई आगे-आगे चल रही थीं और मैं उनके पीछे क़रीब दस गज़ के फ़ासिले पर। वे बीच-बीच में मुड़ कर पीछे भी देख लिया करती थीं। एकाएक उनका रूमाल गिर पड़ा, या यों कहिए कि एकाएक उन्होंने अपना रूमाल गिरा दिया, तो अनुचित न होगा क्योंकि मैंने उन्हें रूमाल गिराते स्पष्ट देखा था। रूमाल गिरा कर वे आगे बढ़ गईं।

जनाब! मेरा कर्तव्य था कि मैं रूमाल उठा कर उन्हें वापस दूँ। और मैंने किया भी ऐसा ही। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।"

मैंने भी मुसकराते हुए कहा, "धन्यवाद की क्या आवश्यकता? यह तो मेरा कर्तव्य था।"

शशिबाला देवी ने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखा, "क्या आप यहीं कहीं रहते हैं? देखा तो मैंने आपको कई बार है।"

"जी हाँ, आप के बराबरवाले बँगले में ठहरा हुआ हूँ। अभी हाल में ही आया हूँ।"

"अच्छा ! तो आप मेरे पड़ोसी हैं, और यों कहना चाहिए कि निकटतम पड़ोसी हैं।" कुछ चुप रह कर उन्होंने कहा, "यह तो बड़े मज़े की बात है। इतना निकट रहते हुए भी हम लोगों में अभी तक परिचय नहीं हुआ !"

मैंने ज़रा लज्जित होते हुए कहा, "एक-आध बार इरादा तो हुआ कि अपने पड़ोसियों से परिचय प्राप्त कर लूँ, और परिचय प्राप्त भी किए, पर आप स्त्री हैं इस लिए आप के यहाँ आने का साहस न हुआ।"

शशिबाला देवी खिलखिला कर हँस पड़ीं, "अच्छा तो आप स्त्रियों से इतना अधिक डरते हैं ! लेकिन स्त्रियों से डरने का कारण तो मेरी समझ में नहीं आता। अब अगर आप अपने भय के भूत को भगा सकें तो कभी मेरे यहाँ आइये। आप से सच कहती हूँ कि स्त्री बड़ी निर्बल होती है, और साथ ही बड़ी कोमल। उससे डरना तो बड़ी भारी भूल है !"

शशिबाला की मीठी हँसी और उसकी वाक्-पटुता पर मैं मुग्ध हो गया। वह सुन्दरी न थी, पर वह कुरूपा भी नहीं कही जा सकती थी। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। गठा हुआ दोहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें और गोल चेहरा। मुख कुछ चौड़ा था, माथा नीचा और बाल घने तथा काले और लापरवाही के साथ खींचे गए थे क्योंकि दोचार अलकें मुख पर झूल रही थीं, जिन्हें वह बारबार सम्हाल देती थीं। रंग गेहुँआ

और कद मझोला। छपी हुई मलमल की धोती पहिने हुई थीं। पैरों में गोटे के काम की चट्टियाँ थीं।

मैंने शशिबाला की ओर प्रथम बार पूरी दृष्टि से देखा, शशिबाला को मेरी दृष्टि का पता था। वह ज़रा सिमट सी गई, फिर भी मुसकराते हुए उसने कहा, "आप बिचित्र मनुष्य दिखाई देते हैं। फिर अब कब आइयेगा"।

"कल शाम को तो आप घर पर ही रहेंगी?"

"अगर आप आइएगा। नहीं तो नित्य के अनुसार घूमने चली जाऊँगी।"

"तो कल शाम को पाँच बजे मैं आऊँगा।"

× × × ×

शशिबाला की और मेरी दोस्ती आशा से अधिक बढ़ गई। मैं विवाहित हूँ, यह तो आप लोग जानते ही हैं; और साथ ही मेरी पत्नी सुन्दरी भी है। इस लिए मैं यह भी कह सकता हूँ कि मेरी दोस्ती आवश्यकता से भी अधिक बढ़ गई। शशिबाला में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण था, जो गृहिणी में नहीं मिल सकता। शशिबाला की शिक्षा और उसकी संस्कृति! मैं नित्य ही उसके यहाँ आने लगा। कभी-कभी रात-रात भर मैं घर नहीं गया।

एक दिन जब सुबह मेरी आँख खुली तो सर में कुछ हलका-हलका दर्द हो रहा था। मैं उठ कर पलंग पर बैठ गया। वह कमरा शशिबाला का था। पर शशिबाला उस समय कमरे में न थीं, वह बाथ-रूम में स्नान कर रही थीं। घड़ी देखी, आठ बज

रहे थे। अँगड़ाई लेकर उठा, खिड़की खोली। सूर्य का प्रकाश कमरे में आया। रात को ज़रा अधिक देर तक जगा था—सर में शायद उसीसे दर्द हो रहा था। ड्रेसिंग टेबिल में लगे हुए आईने में मैंने अपना मुख देखा, सिर्फ़ आँखें कुछ लाल थीं और चेहरा कुछ उतरा हुआ। एकाएक मेरी दृष्टि ड्रेसिंग टेबिल के कोने में चिपके हुए काग़ज के टुकड़े पर पड़ गई। उसमें कुछ लिखा हुआ था। उसे पढ़ा, अँगरेज़ी में लिखा था, 'प्रकाश चन्द्र'। यह प्रकाश चन्द्र कौन है? मैं इसी पर कुछ सोच रहा था कि मैंने शशि-बाला देवी का वेनिटी बाक्स देखा। वैसे तो वेनिटी बाक्स कई बार ऊपर से देखा है, उस दिन उसे अन्दर से देखने की इच्छा हुई। पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, ब्राउ-पेंसिल आदि कई चीज़ें सजी हुई रक्खी थीं। सब को उलटा-पुलटा। एकाएक वेनिटी वाक्स की तह में एक कागज़ चिपका हुआ दिखलाई दिया जिसमें लिखा था, 'सत्यनारायण'। वेनिटी वाक्स बन्द किया, लेकिन प्रकाश चन्द और सत्यनारायण—इन दोनों ने मुझे एक अजीब चक्कर में डाल रक्खा था। एकाएक मेरी दृष्टि कोने में रक्खे हुए ग्रामो-फ़ोन पर पड़ी। सोचा, एक-आध रिकार्ड बजाऊँ तो समय कटे। ग्रामोफ़ोन खोला और खोलने के साथ ही चौंक कर पीछे हटा। अन्दर, ऊपर वाले ढकने के कोने में एक कागज़ चिपका हुआ था जिस पर लिखा था, 'ख़्याली राम'। वहाँ से हटा, हारमोनियम बजाने की इच्छा हुई। धौंकनी में एक कागज़ था, जिस पर लिखा था—'भूटा सिंह।' चुपके से लौटा, कपड़े पहिने; लेकिन जूता

पलँग के नीचे चला गया था। उसे उठाने के लिए नीचे झुका—उफ़! पाए में पीछे की ओर एक काग़ज़ चिपका हुआ था, 'मुहम्मद सिद्दीक़।'

अब तो मैंने कमरे की चीज़ों को ग़ौर से देखना आरम्भ किया। सब में एक-एक कागज़ चिपका हुआ और उस काग़ज़ पर एक-एक नाम—जैसे 'विलियम डर्बी', 'पेस्टनजी सोराबजी बागलीवाला,' 'रामेन्द्र नाथ चक्रवर्ती', 'श्रीकृष्ण रामकृष्ण मेहता' 'रामनाथ टंडन', 'रामेश्वर सिंह' आदि आदि।

उस निरीक्षण से थक कर मैं बैठा ही था कि शशिबाला देवी बाथ-रूम से निकलीं। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "परमेश्वरी बाबू! आज बड़ी देर से सोकर उठे।"

मैंने सर झुकाए हुए उत्तर दिया, "सोकर उठे हुए तो बड़ी देर हो गई। इस बीच में मैंने एक अनुचित काम कर डाला, मुझे क्षमा करोगी?"

मेरे पास आकर और मेरा हाथ पकड़ते हुए उन्होंने कहा, "मैं तुम्हारी हूँ, मुझसे क्यों क्षमा माँगते हो।"

"फिर भी क्षमा माँगना मैं आवश्यक समझता हूँ। एक बात पूछूँ, सच-सच बातलाओगी?"

"तुमसे झूठ बोलने की मैंने कल्पना तक नहीं की है।"

"नहीं, बचन दो कि सच-सच बतलाओगी!"

मेरे गले में हाथ डालते हुए शशिबाला ने कहा, "मैं बचन देती हूँ।"

मैंने कहा, "मैंने तुम्हारे कमरे को प्रथम बार, आज पूरी तरह से देखा है, और वह भी तुम्हारी अनुपस्थिति में। मैं जानता हूँ कि मुझे ऐसा न करना चाहिए था, पर उत्सुकता ने मुझ पर विजय पाई। उसने मुझे नीचे गिराया। हाँ, मैंने तुम्हारे कमरे की सब चीज़ों को देखा, बड़े ध्यान से। पर एक विचित्र बात है, हर-एक चीज़ पर एक काग़ज़ चिपका हुआ है जिस पर एक पुरुष का नाम लिखा है। अलग-अलग चीज़ों पर अलग-अलग पुरुषों के नाम लगे हैं। इस रहस्य को लाख प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं समझ सका। अब मैं तुमसे ही इस रहस्य को समझना चाहता हूँ।"

शशिबाला देवी मुसकरा रही थीं, उन्होंने धीरे से कोमल स्वर में कहा, "परमेश्वरी बाबू यह रहस्य जैसा है वैसा ही रहने दो—उस रहस्य को तुम मुझसे न समझो। तुम इस रहस्य को समझ कर दुखी हो जाओगे, और बहुत सम्भव है इसे जान कर तुम मुझसे नाराज़ भी हो जाओ।"

"नहीं, मैं दुखी न होऊँगा और न नाराज़ ही होऊँगा।"

"अच्छा तुम मुझे बचन दो।"

"मैं बचन देता हूँ।"

शशिबाला कुरसी पर बैठ गई। "परमेश्वरी बाबू! इस रहस्य में मेरी कमज़ोरी है और साथ ही मेरा हृदय है। ये सब चीजें मुझे अपने प्रेमियों से प्रेज़ेन्ट मिली हैं। यह याद रखियेगा कि मैंने प्रत्येक प्रेमी से केवल एक वस्तु ही ली है। अब मेरे पास

इतनी अधिक चीज़ें हो गई हैं कि हर-एक प्रेमी का नाम याद रखना असम्भव है। चीज़ें नित्य के व्यवहार की हैं, इस लिए प्रत्येक प्रेमी की वस्तु पर मैंने उसका नाम लिख दिया है। इससे यह होता है कि जब कभी मैं उस वस्तु का व्यवहार करती हूँ, उस प्रेमी की स्मृति मेरे हृदय में जाग उठती है। क्या करूँ परमेश्वरी बाबू! मेरा हृदय इतना निर्बल है कि मैं अपने प्रेमियों को नहीं भूलना चाहती, नहीं भूलना चाहती।"

"तुम्हारे पास कुल कितनी चीज़ें हैं?" मैंने पूछा।

"सत्तानवे।"

"इतनी अधिक!" आश्चर्य से मैं कह उठा, कह नहीं उठा बल्कि चिल्ला उठा।

"हाँ, इतनी अधिक।" शशिबाला देवी का स्वर गम्भीर हो गया। "परमेश्वरी बाबू, इतनी अधिक! मेरा विवाह नहीं हुआ, आप जानते हैं पर आप यह न समझियेगा कि मेरी विवाह करने की कभी इच्छा ही न थी। मैं सच कहती हूँ कि एक समय मेरी विवाह करने की प्रबल इच्छा थी, प्रत्येक व्यक्ति जो मेरे जीवन में आया भविष्य के सुख-स्वप्न पैदा करता आया, प्रत्येक व्यक्ति को मैंने भावी पति के रूप में देखा। पर क्या हुआ? वह व्यक्ति मुझे प्रेज़ेन्ट दे सकता था, पर अपनी न बना सकता था। धीरे-धीरे मैं इसकी अभ्यस्त हो गई। एक रहस्यमय जीवन धीरे-धीरे मेरे वास्ते एक खेल हो गया। सोचती हूँ कि उन दिनों मैं कितनी भोली थी जब विवाह के लिए लालायित रहती थी, जब पत्रों में

मैंने अपने विवाह के लिए विज्ञापन तक निकलवाए। पर हर-एक आदमी ग़लती करता है, मैंने भी ग़लती की। अब बन्धन की कोई आवश्यकता नहीं। जीवन एक खेल है, जिसका सबसे सुन्दर हृदय का खेल, नहीं भोगविलास का खेल है और खुल कर खेलना ही हमारा कर्तव्य है। परमेश्वरी बाबू, यह मेरी स्मृति की कहानी है और मेरी स्मृति के रूप को तो आपने देखा ही है।"

"साधारण मनुष्यों के लिए यह ठीक हो सकता है।" कुछ हिचकिचाते हुए मैंने कहा।

"साधारण मनुष्यों के लिए ही क्यों ? आपका नम्बर अट्ठानवे होगा।" खिलखिला कर हँसते हुए शशिबाला ने उत्तर दिया।

उस समय मैं न जाने क्यों दार्शनिक बन गया। जनाब ! मेरे जीवन में वैसे तो दर्शन में और मुझमें उतना ही फ़ासिला है जितना ज़मीन और आसमान में, पर शशिबाला की कहानी सुन कर मैं वास्तव में दार्शनिक बन गया। मैंने कहा, "हाँ, जीवन एक खेल है और तब तक जब तक हम खेल सकते हैं। अशक्त होने पर वही जीवन हमारे सामने एक भयानक और कुरूप समस्या बन कर खड़ा हो जाता है। तुम वर्तमान की सोच रही हो, मैं भविष्य की सोच रहा हूँ, दस वर्ष बाद की बात सोच रहा हूँ। उस समय तुम्हारे मुख पर झुर्रियाँ पड़ जायँगी, लोग तुम्हारे साथ खेलने की कल्पना तक न कर सकेंगे। और फिर—फिर ये स्मृतियाँ तुम्हें सुखी बनाने के स्थान में तुम्हें काटने को दौड़ेंगी।

तुम्हारे आगे-पीछे कोई है नहीं, अपने बनाव-सिंगार के कारण तुम कुछ बचा भी न सकती होगी। तब इस खेल के ख़त्म हो जाने के बाद बुढ़ापा, दुर्बलता, भूख, बीमारी और—और गत-जीवन पर पश्चात्ताप बाक़ी रह जायगा। इस लिए मैं तुम्हें वह चीज़ प्रेज़ेन्ट करूँगा जो उन दिनों तुम्हारे काम आवे। तुम्हारा संग्रह बहुमूल्य है, मैं बचन देता हूँ कि मैं दस वर्ष बाद तुम्हारे संग्रह को पाँच हज़ार रुपए में ख़रीद लूँगा। इस प्रकार ये अभिशापित स्मृति-चिह्न उस समय तुम्हारे सामने से हट जावेंगे जब तुम राम का भजन करोगी और भगवान के सामने जाने की तैयारी करोगी। साथ ही पाँच हज़ार रुपयों से तुम बुढ़ापे के कष्टों को भी कम कर सकोगी।

× × × ×

मैंने परमेश्वरी से कहा, "और उसने तुम्हें नौकर द्वारा अपने कमरे से निकलवा नहीं दिया ?"

परमेश्वरी हँस पड़ा, "नहीं। उसने कुछ देर तक सोचा, फिर उसने कहा—'तुमने जो कुछ कहा उसमें मैं सब बातें ठीक नहीं मानतीं, पर इतना अवश्य मानती हूँ कि मैंने अपने बुढ़ापे के लिए कोई इन्तज़ाम नहीं किया। इस लिए मैं तुम्हारे हाथ यह सब बेच दूँगी। कान्ट्रेक्ट साइन कर दो।' और मैंने कान्ट्रेक्ट साइन कर दिया। अभी दो वर्ष तो हुए ही हैं। परसों ही उसका पत्र आया है, जिसमें उसने लिखा है कि इस समय तक उसके पास एक सौ तेरह चीज़ें हो गई हैं।"

अर्थ-पिशाच

मैं उस दिन सचमुच डर गया। मैं प्रकृति से कायर नहीं हूँ, डरपोक भी नहीं; पर न-जाने क्यों मैं उस दिन सिर से पैर तक सिहर उठा। मैं कह दूँ न? मैं डाक्टर हूँ—मृत्यु मेरे लिए कोई नई वस्तु नहीं, उसके साथ तो मैं प्रायः नित्य ही खेला करता हूँ। भयानक से भयानक परिस्थितियाँ मैंने देखी हैं, एकलौते पुत्र की मृत्यु-शय्या पर बैठकर उसके वृद्ध माता-पिता का हाहाकारी विलाप मैंने सुना है। रूखी-सूखी रोटियों से घर भर का पेट भरनेवाले पुरुष को अपनी युवती पत्नी, दुधमुँहे बच्चों, तथा क़ब्र में पैर लटकाए हुए विधवा माता, चाची और दादी की ओर मौन तथा पीड़ित विवशता के साथ डबडबाई हुई आँखों से देखते हुए दम तोड़ते देखा है—पाषाण-मूर्ति की भाँति, भावनारहित तथा अचल! पर उस दिन न-जाने क्यों मैं डर गया!

उस अंधकारमय कमरे में मैंने उस वृद्ध को देखा और उस वृद्ध के सिर पर मैंने देखा...नहीं, कह नहीं सकता, वह क्या था, पर एक छाया थी। मैं नरक पर विश्वास नहीं करता था, पर उस दिन उस कमरे में मैंने साक्षात् नरक देखा, रोमहर्षण और विकराल!

मैंने कमरे में प्रवेश किया और मुझे एक क्षीण स्वर में सुन

पड़ा, "डाक्टर साहब!" जिस ओर से आवाज़ आई थी, उस ओर मैंने देखा—पलँग पर वह वृद्ध बैठा था, उसका मुख मृत्यु के धुँधलेपन से विकृत हो रहा था। मैं उसकी ओर बढ़ा—पर एकाएक मेरे सारे शरीर में कँपकँपी दौड़ गई।

वह वृद्ध अकेला न था—उस कमरे में कोई और भी था। मैंने ध्यान से देखा और वृद्ध के मस्तक पर नाचती हुई मैंने एक घृणित तथा कुरूप छाया देखी। मुझे देखते ही वह छाया मुसकरा पड़ी, उसकी आँखों की आग ने मेरे हृदय को झुलसा दिया, मैं सहम गया।

वृद्ध ने फिर कहा, "डाक्टर साहब!"

छाया लुप्त हो गई; मैं सँभला। आगे बढ़कर मैं वृद्ध के पास पहुँचा—उसका मुख पीला था; आँखें पथराई हुई। उसने मेरा हाथ पकड़कर पुकारा, "डाक्टर साहब!"

मैं कुरसी पर बैठ गया, और मैंने कहा, "कहिए!"

एक पीड़ित स्वर में उसने कहा, "डाक्टर साहब, मुझे बचाइए!"

वृद्ध की बात का मैंने कोई उत्तर न दिया। मैंने उस कमरे को अच्छी तरह से देखा। वह कमरा चौकोर था और उसके बीचोबीच उस वृद्ध का पलँग पड़ा था। उस पलँग के पाये चाँदी के थे और उन पर सोने का काम था। कमरे की नाप का एक फ़ारस का क़ालीन बिछा था और दीवारों पर बड़ी-बड़ी तस्वीरें टँगी थीं। कमरा काफ़ी बड़ा था और उसमें बारह खिड़कियाँ थीं। खिड़-

कियाँ सब बन्द थीं और उनपर मख़मल के काले परदे पड़े थे। दरवाज़े पर भी काला परदा पड़ा था। जेठ की चमकती हुई दोपहर के समय उस कमरे में अमावस्या की अर्धरात्रि का अन्धकार था— एक कोने में एक लालटेन टिमटिमा रही थी।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वृद्ध ने फिर पुकारा, "डाक्टर साहब!"

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "हाँ!"

वृद्ध ने कुछ सोचा, "क्या आप मुझे बचा सकते हैं?"

मैं मौन रहा।

मेरे उत्तर की थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद वह कराह उठा, "आप नहीं बचा सकते डाक्टर साहब—नहीं बचा सकते, जब मैं स्वयं अपने को नहीं बचा सका, तब आप मुझे क्या बचा सकेंगे—उफ़!" और उसकी आँखें बन्द हो गईं।

मैंने उठकर वृद्ध को लिटा दिया।

वृद्ध लेट गया; उसने अपनी आँखें खोल दीं। वह एकटक मेरी ओर देख रहा था और उसके अन्तर के भाव उसके मुख पर स्पष्ट थे। उसकी आँखें गढ़े में धँसी हुई थीं। उसके मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं और उसके चौड़े मस्तक पर बल पड़े थे। एक असह्य पीड़ा से उसका मुख ऐंठ-सा गया था।

उस कमरे में घोर निस्तब्धता छा रही थी। मैं अपने हृदय की धड़कन साफ़ सुन सकता था। मुझसे न रहा गया, मैंने पूछा, "कैसी तबीयत है?"

बृद्ध मुसकराया, "डाक्टर साहब—मृत्यु से लड़ रहा हूँ, और—और कुछ अनुभव कर रहा हूँ, पर क्या अनुभव कर रहा हूँ, मैं बतला नहीं सकता।" वह फिर चुप हो गया।

थोड़ी देर तक हम दोनों मौन रहे। एकाएक बृद्ध बोल उठा, "डाक्टर साहब, आप जानते हैं, मैं क्या हूँ?"

बृद्ध के स्वर में एक असाधारण दृढ़ता आ गई। उस दृढ़ता में कठोरता, कर्कशता और कटुता का विचित्र सम्मिश्रण था! बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए ही उसने फिर कहा, "डाक्टर साहब, आप डरियेगा नहीं, मेरी शक्ति क्षीण हो गई है; मुझसे भी प्रबल एक दूसरी शक्ति मुझ पर विजय पा रही है; मैं आपका अहित नहीं कर सकता। आप नहीं जानते, मैं क्या हूँ! आज के पहले मैं भी नहीं जान सका था—यह मेरे जीवन का प्रथम सत्य है और साथ ही यह मेरे जीवन का अंतिम सत्य होगा—मैं शैतान हूँ, शैतान!"

मैंने स्पष्ट देखा कि वह कुरूप छाया बृद्ध के सिर पर खड़ी हुई हँस रही है।

उस कमरे में मेरा दम घुट रहा था। जी चाहा कि उठकर भागूँ। मैंने उठने का प्रयत्न भी किया। पर मैंने अनुभव किया कि मेरी सारी शक्ति लुप्त हो गई। एक निर्जीव व्यक्ति की भाँति मैं बैठा हुआ सुन रहा था और वह बृद्ध कह रहा था, "मैं वास्तव में शैतान हूँ, डाक्टर साहब, बहुत बड़ा शैतान। लोग मुझे करोड़पति कहते हैं और मैं हूँ भी। धन-वैभव और शक्ति

मेरे पैरों पर लोटते रहे हैं, मनुष्यता को मैंने ठुकराया है। डाक्टर साहब—मुझे बचाइए, हाथ जोड़ता हूँ, मुझे बचाइए! मैं आपको सोने से पाट दूँगा। अपनी सम्पत्ति का उपभोग करने के लिए मुझे जीवन दीजिए!"

वृद्ध उत्तेजित हो उठा, "जी चाहता है तुम्हारा गला मरोड़ दूँ—डाक्टर, मैं अपनी आधी सम्पत्ति तुम्हें दे दूँगा, अगर तुम मुझे मृत्यु से बचा दो। क्या मेरी आधी सम्पत्ति एक जीवन को भी नहीं बचा सकती..."

वृद्ध उठ बैठा, उसमें न जाने कहाँ का बल आ गया था। एक पैशाचिक चमक से उसका मुख चमक रहा था।

पर उठने के साथ ही वह चिल्ला उठा, "तुम फिर क्यों आये, तुम कैसे जी उठे—हटो, मेरे सामने से हटो!" वह एकटक मेरे पीछे देख रहा था।

मैंने पीछे फिरकर देखा, एक दुबला-पतला व्यक्ति खड़ा था। उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी और वह एक फटा चिथड़ा पहने था।

वृद्ध कहता ही रहा, " नहीं, मैं तुम्हारी सम्पत्ति नहीं वापस कर सकता। वह मेरी सम्पत्ति है—क़ानून से मेरी है। तुम कहते हो, मैंने धोखा दिया है; पर तुमने धोखा खाया क्यों? तुम बेवक़ूफ़ हो, मैं अक्लमन्द; तुम निर्बल हो, मैं सबल। तुम न्याय चाहते हो? अदालत जाओ;। तुम दया चाहते हो? भगवान से

प्रार्थना करो। तुम इस दुनिया में रहने के लायक़ नहीं हो? जाओ, आत्महत्या कर लो।"

वह व्यक्ति मुसकराया—एक अजीब दर्दभरी मुसकान थी उसकी। उसने ऊपर की ओर देखा और फिर वह गम्भीर हो गया। इसके बाद वह घूमकर पीछे चला और दीवार में न जाने कहाँ समा गया।

वृद्ध कुछ रुका, उसने गहरी सांस ली, फिर उसने आरम्भ किया, "गया—अच्छा हुआ, गया। धन शक्ति है, परमेश्वर है—डाक्टर साहब, मुझे अच्छा कर दो—हाथ जोड़ता हूँ, मुझे बचाओ!"......वह कहते-कहते रुक गया। वह फिर मेरे पीछे एकटक देख रहा था।

मैं मुड़ा—सामने एक स्त्री खड़ी थी। उसके साथ चार छोटे छोटे बच्चे थे। स्त्री सुन्दरी थी। युवती थी। उसके मुख पर विवशता की छाप थी। वृद्ध चिल्ला उठा, "दूर हट चुड़ैल, मैं क्या करूँ, जो तू भीख माँगती है! तेरा घरबार मैंने अपने क़र्ज़ के बदले में लिया है। तेरे पति ने क्यों मुझसे क़र्ज़ लिया? कौन कहता है कि वह रुक्का जाली था? अदालत की तो डिग्री हो गई थी। तेरे बच्चे भूखों मरते हैं तो उनका गला घोट दे। तू भूखी मरती है तो वेश्या बन जा—निकल मेरे यहाँ से, नहीं तो अभी नौकरों को बुलाकर तेरी आबरू उतरवा लूँगा।"

स्त्री अपने बच्चों के साथ घूमी और वह भी उसी दीवार में लुप्त हो गई।

मैं घबरा गया। सारा बल लगाकर मैं उठ खड़ा हुआ और द्वार की ओर भागा। उसी समय बृद्ध ने चिल्लाकर कहा—"डाक्टर साहब, मुझे अकेला मत छोड़िए. नहीं तो ये लोग मुझे मार डालेंगे।"

मैं रुक गया—अपनी इच्छा के विरुद्ध। मुझे रुक जाना ही पड़ा। उस वृद्ध की आवाज़ में इतनी विवशता से भरा आग्रह था। मैंने पीछे फिर कर देखा, उस बृद्ध के पलँग को घेरे दस-बारह आदमी खड़े थे। लँगोटी लगाये और कृश। उनके नेत्र क्रोध से लाल थे—मानो वे बृद्ध के प्राण लेने पर तुले हों। मेरे रुक जाने से बृद्ध का मुख प्रसन्नता से खिल उठा, उसका भय जाता रहा। उसने कड़ककर उन लोगों से कहा—"तुम्हारी हड़ताल मेरा ज़रा भी अहित नहीं कर सकती। मेरे पास करोड़ों रुपया है, मिल साल दो साल बन्द रहे तो रहे। लेकिन तुम भूखों मर जाओगे—समझे! मैं तुम्हारी तनख्वाह क्यों बढ़ाऊँ—तुम्हारी ग़रज़ हो तो काम करो नहीं तो घर बैठो। तुम्हें गेहूँ खाने की क्या आवश्यकता? ज्वार और चना खाकर तुम जीवित रह सकते हो। फटे कपड़े तुम्हारे तन ढँकने के लिए काफ़ी हैं। एक कोठरी में तुम रह सकते हो। जाओ, निकलो, तुम पशु हो और पशु की तरह रहो। अगर नहीं मानोगे तो एक-एक को गोली से मार दूँगा।"

वे सब के सब निराशा की मुद्रा लिए हुए उसी दीवार में लुप्त हो गए।

मैं भय से पागल हो गया था—चुपचाप लौट आया और कुरसी पर बैठ गया। बृद्ध ने मेरा हाथ पकड़ लिया। उफ़, उसका हाथ बर्फ़ की भाँति ठंढा था। उसने मुझसे कहा – 'डाक्टर साहब! मैं आपका कितना आभारी हूँ—पर आप एक कृपा मुझ पर और करें, मुझे अच्छा कर दें। मैं मरना नहीं चाहता, मैं दुनिया में रहना चाहता हूँ। इस धन के लिए मैंने न-जाने कितनों की हत्या की, यही नहीं, स्वयं अपनी आत्मा की भी हत्या की है। मेरे पास अथाह धन-राशि भरी पड़ी है, एक से एक विद्वान को, एक से एक पुण्यात्मा को मैं ख़रीद सकता हूँ, उससे अपने पैर के तलवे चटवा सकता हूँ। मैं धर्मावतार हूँ, मैं दानी हूँ, मैं मान्य हूँ, मैं क्या नहीं हूँ। लोग मेरी पूजा करते हैं। राजा मेरी बात पर अविश्वास नहीं कर सकता, जनता कह देती है, 'बड़ा आदमी है, झूठ नहीं बोलेगा।' डाक्टर साहब, संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे मैं नहीं ख़रीद सकता। ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसे मैं वश में नहीं कर सकता। डाक्टर साहब मैं जीवन ख़रीदना चाहता हूँ, मृत्यु को वश में करना चाहता हूँ। बोलिए, क्या मैं यह कर सकता हूँ ?"

मैंने धीरे से कहा—"असम्भव !"

"असम्भव !" बृद्ध चीत्कार कर उठा। "क्या कहते हो असम्भव ! तुम बेवक़ूफ़ हो।" और वह पलॅंग के नीचे उतरा, मेरा हाथपकड़ कर उसने कहा—"चलो।" वह मुझे उसी दीवार के पास ले गया जहाँ वे सब मूर्तियाँ लुप्त हो गई थीं।

उसने दीवार में लगा हुआ एक खटका दबाया, और वहाँ दीवार से लगा हुआ एक दरवाज़ा खुल गया। वह एक सेफ़ का दरवाज़ा था, उस सेफ़ के अन्दर सोने की ईंटों के अम्बार लगे थे। बृद्ध ने कहा—"डाक्टर, देखो, यह सब का सब सोना भी क्या मृत्यु को वश में नहीं कर सकता? इतने सोने के लिए संसार का सबसे बड़ा धर्मात्मा मेरा जीवन भर का ग़ुलाम बन जाय। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि कुछ वर्षों के लिए मृत्यु चुप रहे।"

बृद्ध लौट कर पलंग पर लेट गया। सेफ़ का दरवाज़ा खुला ही रहा।

थोड़ी देर तक बृद्ध अनिमेष दृगों से सेफ़ में रक्खे हुए सोने के ढेर को देखता रहा, फिर वह कराह उठा, "डाक्टर साहब! आपके हाथ जोड़ता हूँ, पैर छूता हूँ, मुझे बचाइए। यह सोना, यह घरबार—अपना सब कुछ मैं दे सकता हूँ, बस, मुझे जीवन चाहिए, जीवन!"

उस समय वह घृणित तथा कुरूप छाया बृद्ध के सिर पर फिर आ गई थी। इस बार वह हँस न रही थी। उसका कुरूप मुख प्रतिहिंसा और क्रूरता की निर्दय छाप से और भी कुरूप हो गया था। वृद्ध ज़ोर लगाकर बैठ गया, वह चिल्ला उठा, "डाक्टर! मैं शैतान हूँ, भयानक शैतान! मुझे दुःख है कि मैं मर रहा हूँ। कुछ दिन और ज़िंदा रह सकता तो............उफ़्! मैं हारा—डाक्टर, अंत में मुझे हारना ही पड़ा!" वह गिर पड़ा।

उसी समय एक विचित्र बात हुई। वृद्ध के पलँग से एक काला साँप नीचे उतरा—वह कहाँ छिपा था, मुझे ताज्जुब हो रहा था। वह साँप सेफ़ में घुसा और सेफ़ का दरवाज़ा आप ही आप बन्द हो गया। साथ ही वह छाया भी लुप्त हो गई।

मैं घबराकर उठ बैठा। मैंने वृद्ध की नब्ज़ देखी, हाथ ठंढा था, हृदय पर हाथ लगाया, हृदय की गति बन्द हो गई थी।

मैं दीवार की ओर बढ़ा—पर वहाँ दरवाज़े का कोई चिह्न न था।

उस समय मैंने अनुभव किया कि मैं नरक में खड़ा हूँ। मेरा साहस छूट गया। मैं भागा—दौड़ता हुआ अपने घर आया और बेहोश होकर गिर पड़ा।

वरना हम भी आदमी थे काम के

लोग मुझे कवि कहते हैं, और ग़लती करते हैं; मैं अपने को कवि समझता था, और ग़लती करता था। मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई मियाँ राहत से मिलकर, और लोगों को उनकी ग़लती बतलाने के लिए मैंने मियाँ राहत को अपने यहाँ रख छोड़ा है।

मियाँ राहत वास्तव में कवि हैं। वह नामी आदमी नहीं हैं। उनका कोई दीवान अभी तक नहीं छपा, और शायद कभी छपेगा भी नहीं। मुशायरों में वह नहीं जाते, या यों कहिये कि मुशायरों में वह नहीं पढ़ते। एक बार मुशायरे में उन्होंने अपनी गज़ल पढ़ी, तो उनको इतनी दाद मिली कि बेचारे घबरा गए, और उस दिन से मुशायरों में न पढ़ने की क़सम खा ली। और, दूर की नहीं झाँकते, पर फिर भी वह कवि हैं, इतने बड़े कि आजकल के नामी-नामी शायर सब एक साथ उन पर न्योछावर किये जा सकते हैं।

यदि आप चालीस-पचास साल के एक ऐसे आदमी को मेरे बँगले के बरामदे में देखें, जो लंबा-सा और किसी हद तक मोटा-सा कहा जा सके, जिसका चेहरा गोल, भरा हुआ और उस पर चेचक के दाग़, मूछ नदारद, लेकिन दाढ़ी तोंद तक पहुँचती हुई, सिर पर पट्टे और बाल बीच से खिंचे हुए, आँखें बड़ी-बड़ी, ऊपर उभरी हुई और उनमें सुरमा लगा हुआ, चिकन का कुरता और लंकलाट का ग़रारेदार पाजामा पहने हुए हो, तो आप समझ लें कि यही

मियाँ राहत हैं। वह आपसे झुककर सलाम करेंगे, अदब के साथ आपका नाम पूछेंगे, आपको कुर्सी पर बिठलाकर मुझे आपकी इत्तिला देंगे, और फिर धीरे से वहाँ से खिसक जायँगे। आप उनको मेरा नौकर किसी हालत में नहीं समझ सकते, और मैं उनसे मालिक का बरताव करता भी नहीं हूँ। मैं उनकी इज़्ज़त करता हूँ, बुज़ुर्ग की तरह उन्हें मानता हूँ।

मियाँ राहत से मेरी मुलाक़ात तीन साल पहले हुई थी। यों तो इसके पहले से मैं उन्हें देखता आता था, पर उस समय मुझे उनके नाम और उनकी ख़ूबियों का पता न था। स्टेनली रोड और कैनिंग रोड के चौराहे पर, ख़ाकी वर्दी पहने और लाल पगड़ी बाँधे हुए, मियाँ राहत को मैंने सवारियों को रास्ता बतलाते हुए देखा था। इक्केवाले झुककर मियाँ राहत को सलाम करते थे, और उनकी कुशल-क्षेम पूछते थे, और मियाँ राहत मुस्कराकर उन सबको जवाब देते थे। साथ ही इक्के और ताँगेवाले, उलटे-सीधे, दाएँ-बाएँ जहाँ से तबियत होती थी, इक्का-ताँगा ले जाते थे।

मुझे शक था कि मियाँ राहत शायर अवश्य होंगे। कभी-कभी सवारियों को अपने भाग्य पर छोड़कर मियाँ राहत एक नोटबुक और एक पेंसिल लिए हुए चौराहे के एक कोने में नज़र आते थे। कभी-कभी वह अपनी पेंसिल से नोटबुक में कुछ दर्ज भी कर लेते थे। पहले तो मैंने समझा, मियाँ राहत किसी का चालान कर रहे हैं, लेकिन जब मैंने उनका गुनगुनाना सुना, तो बात समझ में आ गई।

उस दिन मैं सिविल लाइंस में घूमने जा रहा था। शाम का समय था, इलाहाबाद के शौक़ीन रईस अपनी-अपनी मोटरें लेकर घूमने को निकल पड़े थे। स्टेनली रोड और कैनिंग रोड के चौराहे पर जब मैं पहुँचा, तब पैर आपही-आप रुक गए। आँखों ने मियाँ राहत को ढूँढ़ ही तो निकाला। एक किनारे खड़े हुए मियाँ राहत काग़ज़ पर अपनी पेंसिल चला रहे थे। रुककर मैं मियाँ राहत को देखने लगा। इसी समय चौक की तरफ़ से एक कार तेज़ी के साथ आई, और आई अपनी दाहनी ओर मियाँ राहत पर चढ़ती हुई। कार की स्पीड साठ मील प्रति घंटे से कम न रही होगी।

मियाँ राहत अपनी नोटबुक और पेंसिल के साथ इतने मशग़ूल थे कि उन्हें कार के आने की ज़रा भी ख़बर न थी। मैंने ख़तरे को देखा, और ज़ोर से चिल्ला उठा—"मियाँ भागो, नहीं तो जान गई।"

मियाँ राहत उछले, लेकिन कार इस तेज़ी के साथ आ रही थी कि उनके हटते-हटते उसके अगले मडगार्ड का झोंका मियाँ राहत के लग ही तो गया, और मियाँ राहत "लाहौल विलाक़ूवत" कहते हुए ज़मीन पर आ गये। मैं दौड़ा, और कार भी थोड़ी दूर चलकर रुक गई। मैंने मियाँ राहत को उठाया, चोट न आई थी, सिर्फ़ घुटने और कोहनी कुछ छिल गए थे। उठते ही मियाँ राहत ने अपनी पगड़ी दुरुस्त की, और वर्दी से धूल झाड़ी। उस समय कार से एक चौबीस-पच्चीस वर्ष की युवती उतरकर मियाँ राहत के पास आई। बहुत सुन्दर, गोरी और यौवन-भार से लदी

हुई। मुस्कराते हुए उसने मियाँ राहत से पूछा—"चोट तो नहीं लगी ?"

मियाँ राहत ने प्रायः दस सेकंड तक बड़ी गंभीरता-पूर्वक उस युवती को देखा, इसके बाद वह भी मुस्कराए—" नहीं, चोट तो कोई ऐसी नही लगी, लेकिन ज़रा देख-भालकर मोटर चलाया कीजिये।"

युवती ने पाँच रुपए का नोट मियाँ राहत को देते हुए कहा— "हाँ, अभी हाल में ही मोटर चलानी सीखी है। लो, अपने बचने की ख़ैरात बाँट देना।"

अपने हाथ हटाकर जेब में डालते हुए मियाँ राहत ने अपना मुँह फेर लिया—"मिस साहब, मेरी क्या ? मैं तो आप लोगों का ग़ुलाम हूँ, आप लोगो पर अपनी जान न्योछावर करने में भी मैं फ़ख़्र समझूँगा। आप ही, अपनी इस ख़ुश-क़िस्मती पर कि इस चौराहे पर मै था, यह ख़ैरात बाँट दीजिएगा।"

वह युवती मुस्कराती हुई चल दी। मियाँ राहत ने उसे झुककर सलाम किया, इसके बाद उन्होंने अपनी नोटबुक और पेंसिल उठाई। मैंने पूछा—"मियाँ, तुमने इनका चालान क्यों नहीं किया ?"

मियाँ राहत बोले—"क्या करूँ बाबू साहब, दिल गवाही नहीं देता। इन परीज़ादों की तो परस्तिश करनी चाहिये, और आप चालान करने की बात कहते हैं।" इतना कहकर मियाँ राहत और कोने में खिसक गए, और नोटबुक तथा पेंसिल का झगड़ा सुलझाने

लगे। मैं वहाँ से चल दिया, पर चलते-चलते मुझे ये दो पंक्तियाँ सुनाई पड़ीं, जो शायद मियाँ राहत ने उसी समय बनाकर नोटबुक में दर्ज की थीं—

किसी हसीन की मोटर से दबके मरजाना
ये लुत्फ़ यार, हमारे नसीब ही में न था !

न जाने क्यों उस दिन के बाद मेरे हृदय में मियाँ राहत के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। मियाँ राहत मेरे यहाँ प्रायः आया करते थे और घंटों मुझे अपनी कविता सुनाते थे। मैं उनकी कविता समझता भी था, और उनकी काफ़ी दाद देता था।

इस घटना को हुए दो मास हो गए थे। सत्याग्रह-संग्राम ज़ोर से चल रहा था। इधर कई दिनों से मियाँ राहत मेरे यहाँ न आए थे। एक दिन शाम के वक़्त मैं बरामदे में बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था कि मियाँ राहत आए। उनकी मुद्रा देखकर मैं घबरा गया—आँखें डबडबाई हुई, चेहरा पीला और पैर लड़खड़ा रहे थे। मैंने पूछा—"मियाँ राहत ! ख़ैरियत तो है ? यह तुम्हारी क्या हालत, क्या बीमार तो नहीं रहे ?"

कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा—"बाबू साहब ! उफ़् बाबू साहब !" इसके बाद वह लगातार ठंडी साँसें भरने लगे।

मैं वास्तव में घबरा गया। मैंने पूछा—"क्या कुछ तबियत ख़राब है ?"

"नहीं।" मियाँ राहत ने एक ठंडी साँस ली।

"तुम्हारे बीबी-बच्चे तो अच्छी तरह हैं ?"

"हाँ!" मियाँ राहत ने फिर एक ठंडी साँस ली।

"अरे भाई, बतलाते क्यों नहीं कि क्या हुआ?"

मियाँ राहत ने बहुत करुण स्वर में आरम्भ किया—"बाबू साहब! उस दिन की बात तो आपको याद है, जिस दिन मैं मोटर से दबते-दबते बचा था।"

"हाँ-हाँ। भला, उस दिन की बात मैं भूल सकता हूँ!"

"बाबू साहब, उस दिन जो मिस साहब मोटर चला रही थीं, वह कांग्रेस में काम करती हैं!"

"हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। उनका नाम सुशीलादेवी है न?"

"हाँ, बाबू साहब! यही नाम है। आज वह गिरफ़्तार हो गई।"

"तो फिर इससे क्या?"

"क्या बतलाऊँ बाबू साहब! मुझे भी दरोग़ा साहब के साथ उन्हें गिरफ़्तार करने के लिए जाना पड़ा था।" मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि मियाँ राहत रोनेवाले हैं।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद मियाँ राहत ने फिर कहा—"बाबू साहब! यह सरकारी नौकरी बड़ी ख़राब है। इसमें अपनी रूह को चाँदी के चंद टुकड़ों पर बेच देना पड़ता है। जानते हैं बाबू साहब, आज मैंने अपनी रूह का गला घोटकर कितना बड़ा गुनाह किया!"

मैंने कहा—"मियाँ राहत! इस सोच-विचार से कुछ फ़ायदा नहीं। तुम नौकर हो, तुमने अपना फ़र्ज़ अदा किया। इसी के लिए तो तुम तनख़्वाह पाते हो!"

मियाँ राहत चिल्ला उठे—"मैं यह तनख्वाह नहीं चाहता, इस ग़ुलामी से मैं आजिज़ आ गया हूँ।"

मैंने देखा, मियाँ राहत की भावुकता ज़ोरों के साथ उमड़ी हुई है, और रंग बिगड़ा हुआ है।

मैंने कहा—"मियाँ, तुम्हारे बीबी है, बच्चे हैं। उनका पेट भरना तुम्हारा फ़र्ज़ है। उनसे भी कभी पूछा है कि वे तनख्वाह चाहते हैं या नहीं। जाओ, अपना काम करो।"

बीबी और बच्चों का नाम सुनते ही मियाँ राहत की उभड़ती हुई भावुकता पर ब्रेक लग गया। "क्या करूँ बाबू साहब, कुछ समझ में नहीं आता।" इस बार उन्होंने एक बहुत गहरी साँस ली, और उनकी आँख से दो आँसू टपक पड़े।

दूसरे दिन शाम के समय जब मैं काम से लौट रहा था, तो मियाँ राहत के मकान के सामने से निकला। वहाँ जो दृश्य देखा वह जीवन-भर कभी न भूलूँगा। मियाँ राहत ज़मीन पर सिर झुकाए बैठे थे, और उनकी बीबी उनके सिर पर बिना गिने हुए तड़ातड़ चप्पलें लगा रही थी! बीबी रो-रोकर कह रही थी—"निगोड़ा कलमुँहा कहीं का। नौकरी छोड़ आया, हम लोगों को भूखों मारने के लिए। ले, नौकरी छोड़ने का मज़ा ले!"

मियाँ राहत की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे, और वह यह शेर बेर-बेर गा-गाकर पढ़ रहे थे—

इश्क़ ने हमको निकम्मा कर दिया,
वरना हम भी आदमी थे काम के।

बेकारी का अभिशाप

हम लोग कांग्रेस के नेता थे। खद्दर पहनते थे, व्याख्यान देते थे, और भारतवर्ष के इतिहास के निर्माता होने का हमें उचित गर्व था। चौबीस घंटे देश के किसानों और मज़दूरों के हिताहित पर सोचते रहना, कभी-कभी देश की दरिद्रता पर मार्मिक लेख लिख देना और जनता को उसके कर्त्तव्यों का ज्ञान करा कर संगठित करना हम-जैसे प्रत्येक देश-भक्त का काम है।

हम लोग जेल गए थे—दुनिया की निगाह में अपने सिद्धांतों पर बलि होकर, पर वास्तव में तफ़रीहन। अधिक कामकाज से कुछ थकावट आ ही जाती है। अधिक सोचने तथा वादविवाद करने के बाद मस्तिष्क कुछ विश्राम चाहता है, और साथ ही नेता की पदवी की रक्षा करना भी तो आवश्यक होता है। ऐसी हालत में छः महीने जेल के अंदर रह आना यदि वास्तव में देखा जाय तो हमारे लिए आवश्यक था। 'ए' क्लास मिला, भोजन अच्छा और काम—कसरत करना और मलारें गाना। दिन भर पढ़िए-लिखिए और जब इनसे तबीयत उचट जाय, तब गपबाज़ी कीजिए। शायद इतना अधिक आराम तो किसी पहाड़ पर भी नहीं मिलता। वहाँ चिंता रहती है—किराया देना है, खाने के दाम देने हैं और न जाने कहाँ-कहाँ के ख़र्च निकल आते हैं। ऐसी अवस्था में स्वभावतः पहाड़ का आराम महँगा पड़ता है और साथ

ही लोग उँगली उठाने लगते हैं कि अमुक व्यक्ति पूँजीपति है और अगर पूँजीपति नहीं है तो कांग्रेस का रुपया खाए जाता है। इसीलिए जब सन् १९३२ में 'कांग्रेस-मूवमेंट' शुरू हुआ तो हम लोगों को ज़बरदस्ती ज़रा-ज़रा सी बात पर जेल जाने को मजबूर होना पड़ा। हाँ, जेल में हमारे आराम का जो ख़र्च पड़ता था वह 'फ़ाइन' के रूप में हम लोगों के घरों का सामान रुपए के चार आने पर बेचकर वसूल कर लिया गया था—और उस आराम में यही एक थोड़ा सा घाटा था।

हम लोग कुल चार आदमी थे। चारों को हज़ार-हज़ार रुपया जुरमाने में देने के उपलक्ष में 'ए' क्लास मिला था।

मिस्टर गुप्ता ने कहा—मैं तो केवल पालिसी के लिए महात्मा जी के साथ हूँ, वैसे मैं तो पक्का 'सोशलिस्ट' हूँ। आप लोगों ने मज़दूरों की हालत देखी है। वे लोग अँधेरी कोठरियों में रहते हैं। गंदी आदतों ने उनमें जड़ जमा रक्खी है। शिक्षा का उनमें अभाव है। वे लोग यह जानते ही नहीं हैं कि 'डीसेंसी' का जीवन के विकास में क्या स्थान है--

हम लोग ज़ानते थे कि मिस्टर गुप्ता आगे क्या कहेंगे, यही कि मज़दूरों के बल पर मिल-मालिक मौज करते हैं और इस सब का उपाय है 'सोशलिज़्म'—धन का बराबर-बराबर हिस्सों में बटवारा--आदि-आदि।

"फिर फैलाया आपने अपने 'सोशलिज़्म' का जाल।" मिस्टर गुप्ता की बात काटते हुए तिवारी जी ने कहा। तिवारी जी को यदि

किसी बात से घृणा थी तो 'सोशलिज़्म' से। तिवारी जी और मिस्टर गुप्ता दोनों ही वर्तमान समाज से असंतुष्ट थे, यद्यपि दोनों अमीर आदमी थे। पर जहाँ मिस्टर गुप्ता लेनिन के आदेशानुसार वर्तमान समाज को नष्ट कर एक नए समाज के संगठन में विश्वास करते थे, वहाँ तिवारी जी गांधी के अनुसार वर्तमान समाज को उसकी पूर्वावस्था में ले जाने पर विश्वास करते थे। "जनाब! दुनिया को मज़दूरों की आवश्यकता नहीं है, कम से कम ऐसे मज़दूरों की, जिनका आप पक्ष-समर्थन करते हैं। मशीन और मिल—यही तो संसार को एक भयानक विनाश की ओर घसीटे लिए जा रहे हैं। हमें आवश्यकता है किसानों की अवस्था ठीक करने की—उनका संगठन करने की। किसानों में शिक्षा-प्रचार नितांत आवश्यक है।"

"आप दोनों ग़लती कर रहे हैं। मज़दूर और किसान! जनाब, आप उस समाज के नहीं हैं, फिर उनकी चिंता क्यों! आप अपने ही समाज में क्यों नहीं सुधार करते? 'दिया तले अँधेरा' इसी को कहते हैं। आप नहीं जानते कि 'मिडिल क्लास' की कितनी ख़राब हालत है। और आप जान ही कैसे सकते हैं? आप तो किसानों-मजदूरों की समस्या सुलझाने में व्यस्त हैं"—पास खड़े हुए एक क़ैदी ने कहा।

जिस क़ैदी ने ये शब्द कहे थे वह एकहरे बदन का लंबा युवक था। उसके गाल धँस गए थे। आँखें निष्प्रभ थीं। हम लोगों में बातचीत अँग्रेज़ी में हो रही थी, और यह बात भी साफ़-सुथरी

अँग्रेज़ी में कही गई थी। हम लोगों को आश्चर्य हुआ कि हम लोगों के अलावा यहाँ एक और भी शिक्षित क़ैदी मौजूद है। मैंने उससे कहा—"क्या तुम भी राजनैतिक क़ैदी हो ?"

मेरा प्रश्न सुनते ही उस क़ैदी का जोश ठंडा पड़ गया। उसका मुख पीला पड़ गया और आँखें ज़मीन पर गड़ गईं, उसने धीरे से उत्तर दिया—'नहीं'।

इस भाव-परिवर्तन से मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा "फिर तुम कैसे आए।"

उस युवक ने अपने को सँभाला। इस बार उसने मेरी ओर देखा और मुसकरा कर कहा—"चोरी करके", पर उसकी मुस्क-राहट में कितनी व्यथा थी, यह मैं ही जानता हूँ।

"चोरी करके! क्या तुम सच कह रहे हो, आख़िर तुमने चोरी क्यों की"—मिस्टर गुप्ता ने पूछा।

"मुझे चोरी करनी पड़ी और इस लिए की।"

मैंने कुछ देर तक उस व्यक्ति को देखा, इसके बाद मैंने कहा—"अगर तुम्हें कोई आपत्ति न हो, तो मैं तुमसे चोरी करने का कारण पूछूँ।"

थोड़ी देर तक वह व्यक्ति मौन खड़ा हुआ सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा—"आज तक मैंने यह कहानी किसी से नहीं कही, यहाँ तक कि 'कोर्ट' में भी मैं इस विषय पर मौन रहा हूँ। कहने में लज्जा आती है। पर आप लोगों से कहूँगा, क्योंकि आप लोग अपने ही समाज में लगे हुए घुन को नहीं देख सकते। किंतु

क्या आप लोग मेरी लंबी और करुणापूर्ण कहानी को सुन सकिएगा ?"

हम लोगों ने कहा, "कहो"

उसने आरंभ किया :—

मेरा नाम ललित मोहन है, जाति का कायस्थ हूँ और बी० ए० पास हूँ। मैं इलाहाबाद का रहनेवाला हूँ। वहीं मैंने शिक्षा पाई है। इलाहाबाद में मैंने सुख देखा और उसके बाद ही एक भयानक नरक भी देखा है। हाँ—तो इलाहाबाद की 'सिविल लाइंस' में मैं रहता था। मैं क्यों, मेरे पिता रहते थे। अपने पिता का नाम न बताऊँगा—यद्यपि उन्होंने मेरे साथ कोई उपकार नहीं किया—शायद उन्होंने ही मुझे यह नरक देखने को बाध्य किया, फिर भी उनका नाम न बताऊँगा—क्योंकि वे मेरे पिता थे।

हम लोग चार भाई थे। सबसे बड़े भाई राम मोहन कानपुर में अपनी पत्नी तथा तीन बच्चों के साथ रहते थे। वे वहाँ पर किसी मिल में नौकर थे और अस्सी रुपया महीना पाते थे। उनसे छोटे भाई श्याममोहन एम्० ए० पास करके दो साल से नौकरी ढूँढ़ रहे थे। श्याममोहन का विवाह हो चुका था और बच्चा होनेवाला था। तीसरे भाई कृष्णमोहन ने एम० ए० की परीक्षा दी थी और मैंने बी० ए० की।

आप लोगों ने कभी-कभी ऐसे आदमी देखे होंगे जो दुनिया में अपने को सबसे योग्य समझते हैं। मेरे बाबू जी भी ऐसे ही

थे। उनमें दुर्गुण न थे—एक तरह से वे बहुत अधिक सच्चरित्र थे। पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि वे मूर्ख थे। 'सेक्रेटेरियट' में वे तीन सौ रुपया महीना पाते थे, तनख़्वाह कोई कम न थी। पर उन्होंने रुपया बचाने में कभी विश्वास नहीं किया। अपने लड़कों को उन्होंने शिक्षा दी। उस शिक्षा पर उन्होंने अधिक से अधिक ख़र्च किया। ख़ुद अच्छी तरह रहते थे। अच्छा खाते थे और अच्छा पहनते थे। लड़कों की भी वही आदतें पड़ गईं। बाबू जी का कहना था कि लड़कों को शिक्षित करके इस योग्य बना देना अच्छा है कि वे कमा सकें, न कि उनको अशिक्षित रख कर उनके लिए कुछ रुपया छोड़ देना, जिसे वे कुछ ही दिनों में उड़ा दें। मैं कहता हूँ कि बाबू जी का कहना ग़लत था। और उसी का परिणाम तो मैं भोग रहा हूँ।

हाँ, तो गर्मी के दिन थे। बाबू जी आफ़िस से लौटे, और चारपाई पर पड़ रहे। डाक्टर ने कहा—'कालरा है।' और दूसरे दिन बाबू जी की मृत्यु हो गई। कानपुर तार दिया गया, बड़े भाई छुट्टी की दरख़्वास्त अपने एक साथी को देकर चल दिए। बाबू जी का अंत्येष्टि-संस्कार धूमधाम से किया गया। आदमी का आदमी गया, उसके साथ काफ़ी रुपए देने पड़े।

और—और उसके बाद क्या-क्या हुआ, यह सब कहूँगा, यद्यपि उन बातों की याद करते ही हृदय काँप उठता है। फिर भी कहूँगा। शायद यह कहने के लिए ही अभी जीवित हूँ।

बाबू जी ने, आप जानते हैं, हम लोगों के लिए क्या छोड़ा ? निर्धनता ,झूठा अभिमान और समाज की भयानकता। हम लोग मध्यम समाज के थे, रहन-सहन में तो हम लोग ऊँचे समाज के थे। हम लोग शिक्षित भी थे। और हमारे सामने थी बेकारी, चुप रहकर भूखों मरना और 'उफ़' न करना। दुनिया अमीर होने पर तुली हुई है, और शायद इसीलिए निर्धनता भी बढ़ रही है। हम सब आराम चाहते हैं, मान चाहते हैं, प्रतिष्ठा चाहते हैं। यह एक दौड़ है, और यह दौड़ आप जानते ही हैं, भारतवर्ष में संभव नहीं। भारतवर्ष के निवासियों को तो यह चाहिए कि वे भूखों मरें और भगवान का भजन करें। राजा की जय मनावें और एक दूसरे को खा जायँ।

माफ़ कीजिएगा—मैं कहाँ का कहाँ बहक गया। तो हम लोग चार भाई थे, माता थीं, दो भौजाइयाँ थीं, और तीन बच्चे थे। बड़े भाई साहब कानपुर से लौटे प्रयाग वापस आने के लिए और हम तीनों भाइयों के भाग्य में हिस्सा बटाने के लिए। मिल के मैनेजर ने उन्हें बिना आज्ञा प्रयाग चले जाने के उपलक्ष में बरख़ास्त कर दिया था। सब अभागे इकट्ठा हो गए—एक दूसरे का दुःख बटाने के लिए नहीं, एक दूसरे के दुःख को चौगुना बढ़ाने के लिए। पास में पैसा नहीं था। इतनी बड़ी गृहस्थी थी। ख़र्च काफ़ी, चलता तो कैसे—औरतों की ओर नजर गई। सोने के गहने थे, वे गहने बाद में भी बनाए जा सकते हैं। कभी न कभी नौकरी तो मिलेगी ही। एक-एक करके गहनों का

बिकना आरम्भ हुआ। साथ ही हम चारों भाइयों की नौकरी के लिए दौड़-धूप बढ़ी। न जाने कितना रुपया नौकरी पाने के के प्रयत्न में ख़र्च हो गया। नौकरी न मिली।

पिता की मृत्यु; नौकरी का छूटना और एक-एक कर के घर के गहनों का बिकना! बड़े भाई राममोहन का साहस टूट गया। उनका स्वास्थ्य कभी भी अच्छा नहीं रहा था। एक दिन उन्हें ज्वर हो आया। डाक्टर को दिखाने में रुपए का ख़र्च होता, और गहना बेचने में कसक होती थी। इस लिए बड़े भाई साहब ने इस आशा पर कि ज्वर आप ही आप छूट जायगा, उसकी चिंता न की। दो महीने बाद जब भाई साहब बहुत दुबले हो गए, उन्होंने बतलाया कि उन्हें बराबर ज्वर रहता है। और वे डाक्टर के पास गए। जानते हैं आप डाक्टर ने उन्हें देख कर क्या कहा? 'तपेदिक़ है'। क़ीमती दवाएँ बतलाई गईं। उन्हें चारपाई पर लेटे रहने को कह दिया गया।

अब आप श्याममोहन की हालत सुनिए। सुबह से शाम तक नौकरी के लिए घूमना और रात में लौट कर घर की हालत देखना। दौड़ने-धूपने की भी हद होती है। बहुत हाथ-पैर मारे पर नौकरी न मिली, न मिली। पिता जी जब जीवित थे, तब उनको एक पचास रुपए की नौकरी मिल रही थी। पर उस समय उन्होंने वह नौकरी न की। एम्० ए० पास किया था, पचास रुपए की नौकरी के लिए नहीं। और अब उसी पचास रुपए के लिए, पचास ही क्यों चालीस, तीस, कुछ भी मिल जाय, श्याममोहन प्राण देते

थे, पर नौकरी न मिली। धीरे-धीरे घर के गहने समाप्त होने लगे थे—बड़े भाई साहब बीमार पड़े थे। खाने का ठिकाना न था, दवा की बात कौन चलाए? सब्र की भी हद होती है। मनुष्य जीवित रहता है आशा के बल पर। एक दिन पुलिस के थाने से इत्तला आई—घर पर थे कृष्णमोहन और मैं। हम दोनों थाने को गए। कपड़ों में लिपटी हुई श्याममोहन की लाश पड़ी थी। थानेदार के हाथ में खून से तर एक चिट्ठी थी। जानते हैं आप क्या हुआ था? श्याममोहन ने रेल से कटकर आत्महत्या कर ली थी। उस पत्र में उन्होंने लिखा था कि जीवन उनके लिए भार हो गया है, इस असह्य वेदना से मौत ही छुटकारा दे सकती थी, और उन्होंने मौत का आलिंगन किया था।

श्याममोहन चले गए—एक विधवा-पत्नी और एक बच्चा छोड़कर वह मर गए—मैं उन्हें दोष न दूँगा—हर एक आदमी तो साहसी नहीं होता। हर एक व्यक्ति की सहनशक्ति एक-सी नहीं होती। पर समस्या हम लोगों के लिए भयानक हो गई। श्याममोहन के हत्या कर लेने के बाद कृष्णमोहन का मिजाज़ कुछ बिगड़ गया था। पिता जी की मृत्यु को दो वर्ष से अधिक हो चुके थे। बड़े भाई साहब की हालत दिनों दिन ख़राब होती जाती थी। दवा ठीक तरह से हो न पाती थी। घर के गहने क़रीब-क़रीब सब बिक चुके थे। अब बरतनों की बारी आई। कृष्णमोहन और मैं दोनों ही नौकरी पाने की लगातार कोशिश

कर रहे थे—पर नौकरी कहाँ ? जहाँ बीस-पचीस रुपए की नौकरी के लिए हम दरख़्वास्त देते थे, वहाँ कह दिया जाता था कि हम लोग एम० ए०, बी० ए० हैं, आगे चलकर नौकरी छोड़ देंगे। मैं आप से सच कहता हूँ, नौकरी बिना सिफ़ारिश नहीं मिलती, चाहे दस की हो, चाहे सौ की। एक न एक बहाना हम लोगों को नौकरी न देने का लोगों के पास था। फिर नौकरी हमें मिलती ही कैसे ? प्रत्येक अफ़सर के दर्जनों रिश्तेदार हैं। जिनमें प्रायः अधिकांश शिक्षित हैं। और प्रायः सभी नौकरी की तलाश में हैं। कहीं हेडक्लर्क का भतीजा है, कहीं छोटे बाबू का भाई है। कहीं मैनेजर का लड़का है, कहीं डिप्टी साहब का दामाद है। सभी जगह नौकरी के उम्मेदवार भरे पड़े हैं—लंबी-लंबी सिफ़ारिशों के साथ। नौकरी नहीं मिली। हम लोगों ने कुली होने की ठानी। लोगों ने देखा। एक आदमी ने कहा—"बाबू जी यहाँ मसख़रापन करने आए हैं।" दूसरे ने कहा—"बाबू जी हमारी रोज़ी तो छोड़ दीजिए।" वहाँ भी काम न चला। कृष्णमोहन वापस लौटे, उस दिन वह अपने भाग्य पर ख़ूब रोए। दूसरे दिन वे उठे। उन्होंने मुझसे कहा—'ललित, मैं विलायत जाऊँगा'—लड़कपन में कृष्णमोहन को विलायत जाने का बड़ा शौक़ था। मैंने आश्चर्य से उनकी ओर देखा—वह हँस पड़े। बड़ी देर तक हँसते रहे, इसके बाद उन्होंने मुझसे कहा—'ललित, अम्मा से कह दो, मेरा सामान बाँध दें। मैं विलायत जा रहा हूँ। वहाँ से लौटकर कलक्टर हूँगा—तब

देख लूँगा—दुनिया—को देख लूँगा।' इतना कह कर वे नाचने लगे। आप जानते हैं क्या हुआ था?—कृष्णमोहन पागल हो गए थे ।

बरतन भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगे थे । बड़े भाई साहब को डाक्टरों ने जवाब दे दिया था, कृष्णमोहन को पागलख़ाने भेज दिया गया था। माता जी और दोनों भावजें सूख कर काँटा हो गई थीं। बच्चों की बढ़न मर गई थी। हम लोग कंगालों से भी गए बीते थे—और मैं अकेला था। समझ में नहीं आ रहा था—क्या करूँ। उन्हीं दिनों मुझे एक संबंधी के यहाँ से विवाह का निमंत्रण मिला। मेरे वे संबंधी संपन्न थे। सोचा—उन्हीं से नौकरी के लिए कुछ कहूँगा। घर की हालत बताऊँगा। बहुत संभव है, वे कहीं मेरी नौकरी का कोई प्रबंध करा दें। वहाँ पहुँचा।

उनसे कहा—लड़की का विवाह था। वे उसमें व्यस्त थे। संभव है मेरा उनसे कुछ कहने का उचित अवसर न था। उन्होंने रूखे स्वर में अपनी असमर्थता प्रकट की। इन संबंधी को मेरे बाबू ने पढ़ा-लिखाकर अच्छी नौकरी दिलवाई थी । मैं इस व्यवहार का आदी हो गया था, मुझे बुरा भी न लगा । लड़की का विवाह था। रात में चढ़ावे के गहने आए। रहे होंगे कोई दो हज़ार के। एकाएक पाप ने मुझसे कहा—'अगर इन गहनों को तुम ले लो तो बुरा न होगा। इनको बेंचकर साल भर का ख़र्च अच्छी तरह चलाया जा सकता है।' मैं अपने को न रोक सका।

मैं जानता था कि गहने कहाँ रक्खे गए हैं, और रात को मैंने उन्हें चुरा लिया ।

कभी चोरी की न थी। गहने लेकर बाज़ार में बेचने गया। दूकानदार को शक हुआ। उसने मुझे पुलिस के हवाले किया। उन संबंधी के भी आदमी दौड़े और फिर मुझ पर मुक़दमा चला। छः महीने की सज़ा हुई। चार महीने काट चुका हूँ। यही मेरी कहानी है।

मैंने ललितमोहन की ओर देखा—वह शांत था। मुख पर विषाद की एक रेखा तक न थी। मैंने उससे पूछा—"और तुम्हारे घरवालों का तब से कुछ हाल मालूम हुआ ?"

एकाएक बाँध टूट पड़ा। उसका शांत मुख विकृत हो गया। एक पाशविक विद्रोह की छाया उसके मुख पर छा गई। मेरा हाथ ज़ोर से पकड़कर उसने कहा—"चुप रहो, उनकी याद मुझे मत दिलाओ अच्छा होता वे एक-एक कर मर जाते। अच्छा होता यह दुनिया ही नष्ट हो जाती—अच्छा होता......।

कुँवर साहब मर गए !

पिताजी की डाँट, माताजी की विनय, श्रीमती जी के आँसू और श्रीमान्‌जी की अशक्तता मुझे रोक सकने में समर्थ न हो सकीं। तीन दिन तक बुख़ार में पड़े रहने के बाद चौथे दिन सुबह के समय जैसे ही छोटे भाई ने हँसते हुए टेम्परेचर नारमल पर आने की ख़बर दी, वैसे ही केशव ने मुँह लटकाए हुए उसी दिन शाम के समय निकलने वाले कांग्रेस के जलूस की सूचना दी।

केशव के मुँह लटकाने का कारण था। उस दिन नेताओं के दिमाग़ में न जाने क्यों एकाएक यह ख़्याल आ गया कि जलूस ज़रा सिविल लाइन्स की हवा खाय, या यों कहिए कि सिविल लाइन्स जलूस की हवा खाय। वैसे तो सरकार जानती थी कि जलूस निकलता है, जनता जानती थी कि जलूस निकलता है, और जलूस निकालने वाले जानते थे कि जलूस निकलता है, पर बात यों हुई कि सिविल लाइन्स के बँगलों में नौकरों, सवारियों और कुत्तों से घिरे रहने वाले साहबों ने (हिन्दुस्तानी और ग़ैर-हिन्दुस्तानी दोनों ही) कांग्रेस का जलूस न देखा था। कांग्रेस के नेता देशभक्त होने के साथ-साथ परोपकारी होने का भी दम भरते हैं, उन्हें उन साहबों पर दया आई। बड़े-बड़े थियेटर, कार्निवाल, सरकस, सिनेमा, बाल-डान्स, फ़ैन्सी ड्रेस-बाल, घुड़दौड़ आदि-आदि उन लोगों ने देखे; अगर कुछ नहीं देखा तो कांग्रेस का जलूस।

आख़िर यह तमाशा भी तो वे लोग देख लें, इसी बात को ध्यान में रख कर कांग्रेस के नेताओं ने यह तै किया कि कुँआ प्यासे के पास चले, यानी जलूस सिविल लाइन्स चले। इसकी सूचना मिली सरकार को, और सरकार को कुछ बुरा लगा—बुरा लगने की बात भी थी। सरकार ने सोचा कि उसके परम भक्त, कृपापात्र, लायक़, फ़रमाबरदार बेटों को देखना चाहिए लाट साहबों का जलूस जहाँ बैण्ड बजाते हुए तोपों, बन्दूकों, तलवारों से सजी हुई फौजें मार्च करती हैं, घोड़ों पर मूछें ऐंठते हुए अफसर छलाँगें मारते हैं (घोड़े छलाँग मारते हैं, इसीलिये उन घोड़ों पर सवार अफ़सर भी), फूलों से सज़ी हुई मोटरों पर क़ीमती पोशाकें पहने हुए रईस सोलह या आठ घोड़ों से खिचने वाली स्टेटकोच के पीछे-पीछे रेंगते हैं और सड़क पर खड़े हुए ख़ाकी वर्दी तथा लाल पगड़ी से सज्जित सिपाही जलूस देखने के लिए एकत्रित जन-समूह को गरदन में हाथ लगाकर बड़े प्रेम के साथ भाषा के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते हुए पीछे ठेलते हैं, न कि वे देखें कांग्रेस का जलूस जहाँ नंगे सिर, नंगे पैर, खद्दर की फटी धोती और फटा कुरता पहने हुए असभ्य बाग़ी आयँ-बायँ-सायँ बकते हैं। बस जनाब, कांग्रेस के नेताओं ने कहा 'हम सिविल लाइन्स घूमेंगे', और सरकार ने कहा-'मियाँ औक़ात से रहो, तुम कँगल-टिरों की क्या मजाल कि सिविल लाइन्स में घूमो'। कांग्रेस-नेताओं ने कहा कि, 'हम तो आवेंगे ही, सरकार ने कहा—'हम तुम्हें नहीं जाने देंगे', कांग्रेस-नेताओं ने कहा—'हम सत्याग्रह करेंगे', सरकार ने कहा—हम मारे डण्डों के

तुम्हारी खोपड़ी तोड़ देंगे।' बस, इतनी-सी बात और तनातनी हो गई। लेकिन इस सबका नतीजा भोगना पड़ेगा केशव को, क्योंकि नेता थोड़े ही डण्डे खायँगे, डण्डे खायँगे केशव और उनके भाई-बन्द अन्य स्वयंसेवक। इसी लिए उसका मुँह उतरा हुआ था।

हाँ, तो अख़बारों में पढ़ा था कि लाठी-चार्ज होता है, पर लाठी-चार्ज होते न देखा था। मेरा भाग्य खुल गया। जिसे देखने को आखें तरस रही थीं उसे देखने का मौक़ा आ ही गया, फिर भला मैं कब चूकने वाला था। शाम के समय ताँगे पर लदकर मैं कांग्रेस-आफ़िस पहुँचा।

एक अजीब समा बँधा हुआ था। सैकड़ों स्वयंसेवक हाथ में तिरंगे झण्डे लिए खड़े राष्ट्रीय गान गा रहे थे। मुख पर दृढ़ता थी और हृदयों में जोश। बीच-बीच में 'महात्मा गांधी की जय!' 'भारतमाता की जय!!' के नारे बुलन्द होते थे।

जलूस चला, लेकिन लोगों ने मुझे साथ ले चलने से इन्कार कर दिया। मैंने लाख कहा कि, 'मैंने कभी लाठी चार्ज नहीं देखा है, भगवान के नाम पर मुझे भी साथ ले चलो', पर किसी ने एक न मानी। एक ने कहा, 'तुम कमज़ोर हो।' दूसरे ने कहा, 'अगर लाठी खाना चाहते हो तो चल सकते हो, क्योंकि अगर लाठी-चार्ज में एक आज मरा नहीं तो लुत्फ़ ही क्या रहा और तुम इस हालत में हो कि दो लाठियों में ही बड़ी आसानी से शहीद हो सकते हो।' लेकिन मैं शहीद होने को तैयार न था, इस लिए नहीं कि मैं मृत्यु से डरता हूँ, बल्कि इसलिए कि देश को मुझ से बड़ी-बड़ी

आशाएँ हैं। अन्त में यह तै हुआ कि मैं कांग्रेस-आफ़िस में बैठूँ और पुलिस की सूचनाएँ संकलित करता रहूँ।

(२)

मैं अकेला कांग्रेस-आफ़िस में बैठा हुआ था, और टेलीफ़ोन से ख़बरें मिल रही थीं। घण्टी बजी और टेलीफ़ोन पर सुनाई पड़ा—प्रोसेशन · रोड पर पहुँच गया है, यहाँ पर पुलिस-फ़ोर्स रास्ता रोके खड़ी है, उन लोगों के पास डण्डे हैं। सुपरिण्टेन्डेण्ट ने आज्ञा सुनाई कि प्रोसेशन आगे न बढ़े और पीछे लौट जाय। प्रोसेशन वालों ने सुपरिण्टेन्डेण्ट की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। इस पर सुपरिण्टेन्डेण्ट पुलिस ने लाठी-चार्ज की आज्ञा दे दी है। लाठी चार्ज हो रहा है, जनता तितर-बितर हो गई है, केवल स्वयंसेवक जमीन पर बैठ गए हैं।

इसके थोड़ी देर बाद टेलीफ़ोन पर फिर ख़बर मिली—स्वयंसेवक पिट रहे हैं और नेताओं की गिरफ़्तारी हो रही है। एक ताज्जुब की बात है कि कुँवर कमल नारायण ने एकाएक आकर 'भारत माता की जय !' बोली और वे भी गिरफ़्तार कर लिए गए · · ··।" मेरे हाथ से रिसीवर छूट पड़ा, ख़बर अधूरी रह गई।

कुँवर कमल नारायण गिरफ़्तार हो गए, हत्या करके नहीं, घर फाँद के नहीं, बल्कि 'भारतमाता की जय !' बोलकर। मेरे लिये यह इस युग की सबसे आश्चर्यजनक बात थी। कुँवर कमल नारायण उन रईसों में एक हैं, जिनका काम है चौबीसों घण्टे शराब के नशे

में धुत रहना, बिना गाली बात न करना और जब मौक़ा मिल जाय, ऐयाशी करना। उनके देशभक्त बन कर गिरफ्तार होने पर चाहे और किसी को आश्चर्य हो या न हो, पर मुझे उतना ही आश्चर्य हुआ, जितना बन्दर के अदरक खा लेने पर होता, या ख़्वाजा हसन निज़ामी के हिन्दू बन जाने में होता।

फिर घण्टी बजी, "सबके सब स्वयंसेवक गिरफ़्तार हो गये आज का प्रोग्राम 'ओवर' हो गया।"

मैं भी उठा, ताँगा मँगवा कर घर पहुँचा। मुझे देखते ही पिताजी ने अपना मुँह फेर लिया, माताजी ने एक दीर्घ निःश्वास के साथ आँखों से दो आँसू गिराए, श्रीमतीजी ने महावीरजी पर पाँच पैसे के बताशे चढ़ाए और श्रीमानजी पलंगपर लुढ़क पड़े।

आँखें लगी ही थीं कि किसी ने मेरे कमरे के किवाड़ों में धक्का दिया। बड़ी मुश्किल से उठा। किवाड़ खोले तो देखा कि केशव खड़ा है। एक अजब हालत थी; कपड़े फटे हुए, चेहरा पीला और पिंडलियाँ काँप रही थीं। मैंने केशव का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर बुलाया।

केशव मेरा दूर का भाई होता है। बी० ए० पास करने के बाद जब नौकरी की तलाश में उसने अफ़सरों के पीछे इतनी चहल-क़दमी की कि उसका वज़न एक मन से बढ़ कर डेढ़ मन हो गया, तब उस ने कांग्रेस में नाम लिखाया। इस समय वह साधारण स्वयंसेवक से बढ़ कर स्वयं-सेवकों का नायक बन गया था और साल भर के अन्दर ही नेता बनने की सोच रहा था।

हाँफते हुए उसने कहा, " भाई एक गिलास पानी । "

मैं ख़ुद बीमार—नहीं, बीमारी से उठा हुआ था, फिर भी मैंने केशव को पानी दिया । जिस पलँग पर मैं पड़ा था, उस पर अब केशवदेव पैर फैलाए लेटे थे । पानी देते हुए मैंने कहा " कहो, क्या हाल है ? "

लेटे ही लेटे पानी पीकर उसने कहा " मार डाला...बदमाशों ने ! "

केशव की हालत देख कर कुछ दुःख होता था, कुछ हँसी आती थी । अपनी हँसी दबाते हुए मैंने कहा " तुम तो गिरफ़ार हो गए थे । इस समय यहाँ कहाँ ? "

" क्या बताऊँ, अभी बारह मील का रास्ता पैदल तै किए हुए चला आ रहा हूँ ! "

" यह कैसे ? " मैं अपनी हँसी अब अधिक न दबा सका ।

केशव बिगड़ कर बोला, " यहाँ जान निकल गई और तुम्हें हँसी सूझती है । बदमाशों ने लारी पर लाद कर बारह मील की दूरी पर छोड़ दिया । "

" पूरा हाल तो बतलाओ ! "

" हाल क्या बतलाऊँ । दो डन्डे पड़े, इसके बाद गिरफ़ार हुआ । हवालात पहुँचा । वहाँ से एक लारी पर लादा गया और सब लोगों के साथ छोड़ दिया गया जङ्गल में । लारी चल दी और हम लोगों को वापस आना पड़ा पैदल । "

केशव का क़िस्सा समाप्त हुआ । एकाएक मुझे कुँवर कमल

नारायण की याद आ गई । मैंने पूछा, " तुम लोगों के साथ सुना है आज कुँवर कमल नारायण भी गिरफ़ार हुए थे । "

केशव उछल पड़ा, मुँह पर छाई हुई मुर्दनी ग़ायब हो गई । " अरे हाँ, अच्छी याद दिलाई । तो फिर कुँवर साहब का क़िस्सा आदि से सुनाऊँ ? "

" और नहीं क्या ! "

केशव ने आरम्भ किया—कुँवर साहब के ड्राइवर का कहना है कि कुंवर साहब के यहाँ कल कुछ मेहमान आ गए थे । जितनी शराब थी, वह सब ख़तम हो गई । आज शाम के समय घर में एक बूँद नहीं और कुँवर साहब को उसकी बड़ी आवश्यकता, क्योंकि नशा उतर गया था ।

शराब की इतनी तलब कि उन्हें मँगवाकर पीने की फ़ुरसत न थी । कार पर बैठकर दूकान पर ही ख़रीद कर पीने के लिए चल दिए । इधर दूकान पर धरना बैठा हुआ था । लोगों ने लू-लू बोली और कुँवर साहब ने कार सिविल लाइन्स की तरफ बढ़वा दी । रास्ते में जलूस मिला । कुँवर साहब को देखकर लोगों ने फ़िक़रे कसे और कुँवर साहेब ने गालियाँ दीं ।...... ..रोड के चौराहे पर उस समय लाठी-चार्ज हो रहा था । कुँवर साहब ने कार रोक दी । उतर कर वे लाठी-चार्ज देखने लगे । कुछ देर तक उन्होंने यह तमाशा देखा । फिर वे एकाएक कप्तान साहब के पास पहुँचे । उन्होंने कहा " कप्तान साहब ! आप इन निहत्थों को क्यों मार रहे हैं ? अपने आदमियों को रोक दीजिए । "

कप्तान नया था, वह कुँवर साहेब को पहचानता न था। उसने कहा—'चुप रहो, तुम अपना काम देखो।'

कुँवर साहब को बुरा लगा। पता नहीं उन्हें स्वयंसेवकों का पिटना अधिक बुरा लगा या कप्तान साहब का जवाब। उन्होंने आव देखा न ताव, गरज कर पुलिस वालों से कहा—'इन लोगों पर लाठी चलाना बन्द करो।'

एक क्षण के लिये पुलिस वाले अवाक् रह गए। लोगों ने जब देखा कि कुँवर कमल नारायण लाठी चलाने को बन्द करा रहे हैं, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारे लगाए—'महात्मा गान्धी की जय!' 'भारतमाता की जय!!' और कुँवर साहब ने भी दुहराया—'महात्मा गांधी की जय!'

इसी समय कप्तान साहब ने कुँवर साहब को गिरफ़ार कर लिया। लारी पर बिठला कर वे हवालात भेज दिए गए।

हम लोग भी हवालात भेजे गए। वहाँ कुँवर साहब से कोतवाल साहब की जो बातें हुईं, वे हमें मालूम हुईं। वे इस प्रकार हैं—

कोतवाल साहब ने कहा—'कुँवर साहब! आप यहाँ कैसे भूल पड़े?'

कुँवर साहब का मुख क्रोध से लाल था, कोतवाल साहब ने ताड़ लिया। बोले—'मालूम होता है आप को प्यास लगी है।'

कुँवर साहब ने अपना सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

व्हिस्की का एक पेग बरफ़ और सोडा के साथ कुँवर साहब

के सामने पेश किया गया, एक घूँट में पूरा गिलास ख़ाली करके कुँवर साहब ने गिलास लानेवाले की ओर देखा। कोतवाल साहब के इशारे पर दूसरा गिलास आया।

कुँवर साहेब की जान में जान आई।

कोतवाल साहब ने मौक़ा देखा। बोले—'कुँवर साहब ! आप कैसे भूल पड़े ?'

एक ठण्डी साँस लेकर कुँवर साहब ने कहा—'आज घर में शराब ख़त्म हो गई थी, और प्यास ज़ोर की थी। शहर में दूकानों पर धरना था, इस लिए सिविल लाइन्स जा रहा था।'

कोतवाल साहब ने कहा—'क्या बतलाऊँ कुँवर साहब, इन कांग्रेस वालों ने तो नाक में दम कर रक्खा है। आप जानते हैं आज सिविल लाइन्स की दूकानों पर भी धरना देने आ रहे थे। जब रोका तो माने ही नहीं। अगर पीटे न जाते तो सिविल लाइन्स की शराब की दूकानों पर भी ये लोग धरना करते।'

'ऐसी बात है ?'—कुँवर साहब ने चौथा पेग पीते हुए आश्चर्य से पूछा।

'हाँ साहब ! अब बतलाइए, क्या किया जाय ? और आप हम लोगों को इन बदमाशों को पीटने से रोक रहे थे।'

कुँवर साहेब ने कोतवाल का हाथ पकड़ कर कहा—'दोस्त, ग़लती हो गई, क्या बताऊँ, अब क्या हो सकता है ?"

'कुछ नहीं, आप 'क़तई इसकी फ़िक्र न करें। घर जाकर आराम करें।'

कुँवर साहब की कार बाहर खड़ी थी। उस पर लाद कर वे घर भेज दिए गए। उस समय कुँवर साहब क़रीब क़रीब एक बोतल व्हाइट हार्स की समाप्त कर चुके थे।

केशव ने कहानी समाप्त की और वह मेरी अलमारी में रक्खे हुए फलों पर इस प्रकार झपटा जैसे भूखी बिल्ली चूहे पर झपटती है।

३

दूसरे दिन पत्रों में निकला—"सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने ग़लती से कुँवर कमल नारायण को सत्याग्रही समझकर गिरफ़ार कर लिया था। उस समय कुँवर कमल नारायण कुछ नशे में भी थे, नहीं तो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को यह ग़लती करने का मौक़ा न मिलता।"

इस ख़बर को पढ़ कर हम लोग चार आदमी कुँवर कमल नारायण का ध्यान पत्रों में निकले हुए समाचार की ओर आकर्षित करने के लिए पहुँचे। बँगले के बरामदे में कुँवर साहब बैठे हुए थे और उनके सामने पड़ी हुई मेज़ पर एक व्हाइट हार्स की खुली हुई बोतल, तीन-चार सोडा की बोतलें तथा एक शराब से भरा गिलास रक्खा था, और कुँवर साहब की नज़र बाग़ में काम करनेवाली जवान मालिन पर थी। हम लोगों को देखते ही वे उठ खड़े हुए। उन्होंने आवाज़ दी—'अबे ओ.......... कलुआ, देख तो इन खद्दर-पोशों को किसने बँगले में घुस आने दिया?' इनसे कह दे कि कुँवर साहब मर गए।'

एक अनुभव

उस दिन मेरे मित्र नरेन्द्र ने दावत दी थी। और यह तै हुआ था कि खाना खाने का लुत्फ़ जितना अच्छा किसी होटल में मिल सकता है उतना अच्छा घर में नहीं। नवयुवकों की धमाचौकड़ी, एक दूसरे को गाली-गलौज और फिर बहुत गम्भीरता-पूर्वक अपनी-अपनी प्रेम-कहानियाँ—इन सब की गुंजाइश भले घर में नहीं होती। पहले तो माताएँ, बहिनें, भौजाइयाँ इत्यादि इत्यादि, दूसरे चश्मा चढ़ाए हुए और दाढ़ी फटकारते हुए बुज़ुर्गवार जो किसी न किसी बहाने अपने बरख़ुरदारान व उनको ख़राब करने वाले शोहदे दोस्तों की हरकतें देखने के लिए कमरे में एक-आध बार अवश्य झाँक जाते हैं, और तीसरे यदि खाना ख़राब बना तो घर वालों को मुक्त-कण्ठ से गालियाँ नहीं दी जा सकतीं। इस लिए होटल ही तै रहा।

शाम को हम लोग नरेन्द्र के घर पर ही एकत्रित होकर काश्मीरी होटल पहुँचे। हम लोग कुल सात आदमी थे। होटल को सूचना पहले से ही दी जा चुकी थी, सीधे डाइनिंग हाल में डट गए। खाना पाँच मिनट के अन्दर ही हम लोगों के सामने आ गया।

हम लोगों ने खाना आरम्भ ही किया था कि एक सज्जन ने डाइनिंग हाल में प्रवेश किया। हम लोगों की मेज़ के पास ही एक

छोटी सी मेज़ पड़ी थी, उसी पर वे सज्जन बैठ गए। उनका खाना भी उनके सामने आ गया।

अपने बीच में उन सज्जन का आना हम लोगों को बुरा लगा, और घनिष्ट मित्रों के बीच में एक अपरिचित व्यक्ति का आ जाना बुरा लगने की बात भी थी। रामेश्वर ने प्रस्ताव किया कि उन सज्जन को इतना बनाया जाय कि वे स्वयं ही वहाँ से उठ जायँ। प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया। रामेश्वर ने उन सज्जन से कहा, "महाशय जी आप अलग क्यों बैठे हैं? इसी मेज़ पर चले आइए, काफ़ी जगह है।

उत्तर में अपनी थाली लिए हुए वे स्वयं ही हमारी मेज़ पर आ पहुँचे। उनकी उस बेतकल्लुफ़ी पर हमें आश्चर्य हुआ। वे मँझोले क़द के तथा गठे बदन के एक सभ्य पुरुष थे। सेटीन जीन का सूट पहने थे। दाढ़ी—मूँछ साफ़, रंग गेहुँआ और बात-चीत से उच्च कोटि के समाज के व्यक्ति मालूम होते थे। उनका नाम था पृथ्वीनाथ, जाति के कायस्थ थे, ज़मीन्दार थे और रईस थे। तफ़रीहन घूमा करते थे, एम्० ए० पास थे, नेता बनने की धुन में थे। कभी-कभी व्याख्यान दे देते थे और प्रायः अँगरेज़ी अख़बारों में राजनैतिक लेख लिख मारा करते थे।

"अच्छा, तो आप लोग सब के सब इसी नगर के रहने वाले हैं!" हम लोगों का परिचय पाकर उन्होंने कहा, "दावत का प्रबन्ध तो घर पर ही हो सकता था, फिर होटल क्यों चुना?"

मैंने कहा "साहब, होटल में जितनी सुविधा तथा स्वच्छन्दता प्राप्त है उतनी घर में नहीं मिलती।"

"बात तो आपने ठीक कही। मुझको ही लीजिए, इस नगर में मेरे प्रायः एक दर्जन रिश्तेदार हैं, लेकिन मैं होटल में ही ठहरा करता हूँ। सुविधा तथा स्वच्छन्दता के साथ-साथ होटलों में कभी-कभी ऐसे अनुभव प्राप्त हो जाते हैं जो ज़िन्दगी भर याद रहते हैं।"

हम लोगों का कौतूहल बढ़ा, "तो क्या कभी आपको ऐसा अनुभव प्राप्त हुआ है?" परमेश्वरी ने पूछा।

"हाँ!" पृथ्वीनाथ ने उत्तर दिया, "और एक अनुभव तो मैं शायद ज़िन्दगी भर न भूलूँगा। यदि आप लोग सुनना चाहें तो मैं उसे सुना भी सकता हूँ।"

"अवश्य सुनाइए!" हम सब लोगों ने एक साथ कहा।

× × ×

अभी पारसाल की बात है। अक्टूबर का महीना था। कश्मीर से लौटते समय मैं दो दिन के लिए लाहौर रुक गया। लाहौर उत्तर भारत में विशेषता रखता है, और वहाँ मेरे दो-एक मित्र भी हैं। मैं वहाँ एक होटल में ठहरा। होटल का नाम मैं आप लोगों को न बतलाऊँगा, पर इतना कह देना काफ़ी होगा कि वहाँ का प्रबन्ध बहुत सुन्दर था और वहाँ हर तरह का आराम था। दिन भर मैं नगर में घूमता रहा, भोजन मैंने अपने एक मित्र के यहाँ किया और आठ बजे के क़रीब मैं वापस आया। उस समय होटल के मैनेजर वहाँ न थे।

पंजाब में परदा नहीं होता, यह मैं आपको बतला दूँ। मैनेजर की पत्नी वहाँ अपने पति के स्थान पर आसीन थीं। उन्होंने मुझसे पूछा, "खाना भिजवा दूँ?"

"नहीं धन्यवाद! मैं अपने एक मित्र के यहाँ भोजन कर आया हूँ।"

"और कोई प्रबन्ध चाहिए तो बतलावें, यहाँ हर तरह की सुविधा प्राप्त है।" आँखें मटकाते हुए और मुस्कराते हुए उसने मुझसे कहा।

"नहीं धन्यवाद!" मैं उस स्त्री का मतलब न समझ पाया था।

गर्मी समाप्त हो चुकी थी और गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। मैं सीधे अपने कमरे में गया, मैंने बिजली जलाई और कपड़े बदले। इसके बाद मैं कुरसी पर बैठ कर 'ट्रिब्यून' पढ़ने लगा।

मैं जिस कमरे में था उसकी बाबत भी कुछ थोड़ा सा बतला दूँ। कमरा काफ़ी छोटा था, केवल एक चारपाई उसमें आ सकती थी, बग़ल में एक मेज़ और एक कुरसी पड़ी थी।

वह कमरा एक हाल का टुकड़ा था। हाल बड़ा था और इस लिए होटलवालों ने उसमें चार कमरे निकाले थे। उन कमरों की दो ओर तो दीवार थी और दो ओर लकड़ी के पार्टीशन थे, जिन पर सीमेन्ट का हलका सा प्लास्टर था। हाल की ऊँचाई प्रायः सोलह फ़ीट थी और पार्टीशन की ऊँचाई प्रायः आठ फ़ीट।

अच्छा तो जिस समय मैं 'ट्रिब्यून' समाप्त करने वाला था, मुझे बरामदे में स्त्रियों के कण्ठस्वर सुनाई पड़े। एक क्षण के लिए

मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ, पर यह सोच कर कि सम्भवतः होटल में इस समय कुछ अतिथि आए होंगे, मैं फिर पत्र पढ़ने लग गया। इसके बाद होटल के कमरों के खुलने तथा बन्द होने की आवाज़ मुझे सुनाई दी।

मैंने 'ट्रिब्यून' पूरा पढ़ डाला, घड़ी देखी, दस बज चुके थे। दिन भर का थका था, बिजली बुझा कर मैंने सोने की ठानी; पलँग पर लेट गया और दिन भर जो कुछ देखा-सुना था उस पर विचार करने लगा। एकाएक मैं चौंक उठा।

पूरब वाले कमरे में से एक दबी हुई सुरीली आवाज़ सुनाई दी। जनाब, मैं आप लोगों को बतला दूँ कि मैं कलाविद हूँ, मैं गाना पसन्द करता हूँ, और जब गानेवाले का कण्ठ कोमल हो तब तो उसे सुनने के लिए मैं बेचैन हो जाता हूँ। यह सुरीली आवाज़ किसी स्त्री की थी और वह स्त्री बहुत दबे हुए स्वर में एक पंजाबी गाना गा रही थी, जिसकी पहिली पंक्ति मुझे अब भी याद है, 'कदी आउँदा कदी नहीं आउँदा।'

जिस कमरे से यह आवाज़ आ रही थी उस कमरे में ठहरे हुए सज्जन को मैं पहचानता था। ये सज्जन मेरे साथ ही लाहौर उतरे थे और उन्हीं के कहने से मैं इस होटल में ठहरा भी था। ये सज्जन अकेले थे और इस लिए इनके कमरे में से निकलते हुए स्त्री के स्वर को सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ और मेरा कौतूहल बढ़ा। मैं कान लगा कर गाना सुनने लगा।

उसी समय उत्तरवाले कमरे में से कुछ अस्पष्ट प्रेमालाप

सुनाई पड़ा। उस प्रेमालाप के साथ उबलते हुए उच्छ्वासों की ध्वनि भी मिली थी। अब पूरबवाले कमरे से हट कर मेरे कान उत्तरवाले कमरे की ओर लग गए। उत्तरवाले कमरे में जो सज्जन ठहरे थे उनसे सुबह चाय पीते हुए मेरी बात-चीत हुई थी। उस बात-चीत से मुझे पता चल गया था कि वे विधुर हैं, विवाह पर विश्वास नहीं करते और उनके जीवन का ध्येय है 'खाओ, पिओ और मस्त रहो।'

आप लोग मुझे नीच समझते होंगे क्योंकि मैं दूसरों की बातें सुन रहा था। पर मैं आप लोगों से सच कहता हूँ कि मैं उतना नीच नहीं हूँ। मैं दूसरों की बातें सुनने को कभी उत्सुक नहीं रहा हूँ, और जो कुछ उन कमरों में हो रहा था वह नहीं सुनना चाहता था। पर पार्टीशन इतना नीचा था कि मैं सुनने को बाध्य था। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि मेरी आँखों से नींद ग़ायब हो गई थी और लाख कोशिश करने पर भी मैं उधर से अपना ध्यान न हटा सकता था।

एकाएक मेरी समझ में सारा रहस्य आ गया। मैनेजर की पत्नी का मुझसे पूछना, 'और कोई प्रबन्ध चाहिए, तो बतलावें!' स्त्रियों का कण्ठ-स्वर और कमरों का खुलना तथा बन्द होना इत्यादि। उस समय मेरा सारा शरीर जल रहा था, साँस तेज़ी के साथ चलने लगी थी, और चित्त बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था।

जनाब! यहाँ पर मेरा आप लोगों को यह बतला देना अनु-

चित न होगा कि मैं विवाहित हूँ और मेरे बाल-बच्चे हैं। आज तक मैंने अपने को यदि विचारों में नहीं तो कर्मों में अवश्य पवित्र रक्खा है। पर उन दिनों मैं दो महीने से घर से बाहर था, और कश्मीर के जल-वायु तथा फलों के कारण मेरा वज़न करीब सात पौण्ड बढ़ गया था। मेरे चेहरे पर सुर्खी छा गई थी। ऐसी अवस्था में आप लोग समझ ही सकते हैं कि उस कमरे में मेरा दम घुटना अस्वाभाविक न था।

मैं उठ खड़ा हुआ, उठ कर मैंने बिजली जलाई और द्वार खोला। ठंढी हवा का एक झोंका आया, पर उसका भी कोई विशेष असर न हुआ। मेरे कान लगातार दीवार की ओर लगे थे।

उस समय मेरी मानसिक स्थिति क्या थी, आप लोग नहीं समझ सकते और न मैं समझा ही सकता हूँ। उसे वह मनुष्य समझ सकता है जो कभी उस स्थिति में पड़ा हो। अपना ध्यान उधर से हटाने के लिए कुरसी पर बैठकर मैंने पत्र लिखना आरम्भ कर दिया। एक पंक्ति लिखता था और ध्यान फिर उन कमरों में दौड़ जाता था। उसके बाद क्या लिखना है यह सब भूल जाता था। उस पंक्ति को काटकर दूसरी पंक्ति लिखो और फिर वही हाल।

मैं नहीं बतला सकता कि कितनी देर तक मैं यह तमाशा करता रहा, पर उसी समय मुझे बाहर बरामदे में से स्त्रियों के कुछ कण्ठ-स्वर अवश्य सुनाई पड़े। एक कण्ठ-स्वर मैं पहिचानता

था, वह मैनेजर की पत्नी का था, दूसरा अपरिचित था। रात का सन्नाटा था, और मेरा कमरा खुला था। इस लिए मैं उन दोनों की बात-चीत, यद्यपि वह बहुत दबी ज़बान में हो रही थी, भलीभाँति सुन सकता था।

मैनेजर की पत्नी ने कहा, "तुम अभी तक क्यों नहीं आईं, अब बहुत देर हो गई, क्योंकि यहाँ पूरा इंतज़ाम हो चुका है।"

इस पर उस अपरिचित स्त्री ने बहुत करुण स्वर में कहा, "मेरी तक़दीर! क्या करूँ मेरे यहाँ कुछ लोग शराब पीकर घुस आए थे, इसी लिए देर हो गई। देखो कोई मेहमान ख़ाली हों।"

मैनेजर की पत्नी ने कहा, "नहीं अब कोई मेहमान ख़ाली नहीं हैं।" पर कुछ सोचकर उसने फिर कहा, "हाँ, एक मेहमान ज़रूर ख़ाली हैं, लेकिन वह या तो आर्यसमाजो हैं या बेवक़ूफ़ हैं।"

उस स्त्री ने बहुत गिड़गिड़ा कर कहा, "अच्छा तो एक दफ़े कोशिश कर लो।"

मैनेजर की पत्नी मेरे कमरे में आई। इस बार मैंने उसको ग़ौर से देखा। वह अधेड़ थी और उसका रंग गोरा था। गालों पर झाईं पड़ गई थी, पर हृष्ट-पुष्ट थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी समय वह भी सुन्दरी रही होगी। उसने मुसकराते हुए मुझसे कहा, "बाबू जी रात का कोई इन्तज़ाम आपको चाहिए?"

मैं उस समय अपना ग्यारहवाँ लेटर-पेपर फाड़ रहा था। बिना सोचे समझे मैंने कह दिया, "भेज दो!"

"दस रुपए हुए, और वह भी पेशगी।"

मैंने पास से दस रुपए का नोट निकाल कर उसे दे दिया। वह बाहर चली गई। उसके बाहर जाने के आध मिनट बाद ही एक स्त्री ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। उस समय मेरे हाथ में फाउन्टेन पेन था और मेरा सामने खुला हुआ लेटर-पैड। वह स्त्री दरवाज़े पर रुक गई।

मैंने अपनी आँखें उठाई। जिस स्त्री ने मेरे कमरे में प्रवेश किया था वह सुन्दरी थी, यह स्पष्ट था। उसका रंग गोरा था और बदन इकहरा। शायद वह दुबली थी और इसी लिए वह लम्बी मालूम होती थी। उसका मुख गोला था और गालों का बैठना आरम्भ हो रहा था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं पर उनमें आभा न थी।

वह एक नीली शलवार पहने थी, जो मखमल की थी और जिस पर गोटे का काम था। शलवार पर रेशमी कुरता था और उस पर महीन रेशमी चिकन का हरा दुपट्टा था। वह प्रतीक्षा कर रही थी कि मैं कुछ कहूँ।

मैं नहीं जानता था कि क्या करूँ। कभी पहले ऐसी परिस्थिति में पड़ा न था; पर कहना कुछ अवश्य था, इस लिए बैठे ही बैठे मैंने कहा, "दरवाज़ा बन्द कर दो!"

उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया, और फिर मेरी ओर देखा। मेरे सामने फिर वही समस्या रह गई कि क्या किया जाय। एका-एक मेरे मुख से निकल पड़ा, "अपने सब पकड़े उतार दो!"

आप लोग शायद यह पूछें कि मैंने ऐसा क्यों कहा। मैं स्वयं भी कारण नहीं बतला सकता। बहुत सम्भव है कि 'किस प्रकार आगे बढ़ा जाय' यह सोचने के लिए मैं समय निकालना चाहता था, या बहुत सम्भव है कि मैंने वैसे ही बिना समझे बूझे यह वाक्य कह दिया हो; पर कह मैंने अवश्य दिया, और उस स्त्री ने निःसंकोच अपने वस्त्र उतार दिए। जिस समय वह वस्त्र उतार रही थी, मेरी आँखें मेज़ पर गड़ी थीं, और मैं यह सोच रहा था कि क्या किया जाय। उस स्त्री ने कहा, "बाबू जी अब क्या करूँ ?"

उस समय तक मैं कुछ स्थिर न कर पाया था। मैंने उस स्त्री की ओर देखा, और वैसे ही मैंने चिल्लाकर अपनी आँखें फेर लीं, "अपने कपड़े पहिन लो !"

मैंने यह क्यों किया, यह आप पूछेंगे। उस समय मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि रुपया मनुष्य को पशु बना सकता है। रुपए के वास्ते मनुष्य घृणित से घृणित काम करने को बाध्य होता है। स्त्री का सर्व-श्रेष्ठ प्राकृतिक गुण लज्जा है। मेरे सामने जो स्त्री खड़ी थी, चाँदी के कुछ टुकड़ों की आवश्यकता ने उसे इतना अधिक गिरा दिया था कि वह अपने सर्वोत्तम गुण को तिलाञ्जलि दे चुकी थी। पर एक बात और भी सम्भव है, वह यह कि वहाँ पर मेरी संस्कृति तथा सामाजिक भीरुता ने काम किया हो क्योंकि मैंने उस दिन बाज़ार में बिकने वाले नग्न तथा अश्लील सौन्दर्य को प्रथम बार देखा था। या फिर दोनों ही भाव मुझमें एक साथ

आए हों। पर इतना निश्चय है कि मेरे हृदय में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई।

उस स्त्री ने कपड़े पहन लिए। मैंने उससे कहा, "यहाँ आओ!"

वह मेरे निकट आ गई। मैंने उसे सिर से पैर तक देखा, इसके बाद उससे पूछा, तुम इस पेशे में कितना पैदा कर लेती हो?"

कुछ झिझकते हुए कहा, "क़रीब सत्तर अस्सी रुपया महीना।"

"और तुम कितना ख़र्च करती हो?"

"सब का सब ख़र्च हो जाता है। कभी दस-पाँच रुपए बच गए तो बच गए।"

मैंने फिर पूछा, "क्या तुम इस काम को पसन्द करती हो?"

वह हँस पड़ी। पर उसकी वह हँसी कितनी रूखी थी, कितनी भयानक थी! मैं घबड़ा गया। उसने कहा, "क्या सभी आदमी वह काम करते हैं जिसे वे पसन्द करते हैं? हमारे सामने सवाल ज़िन्दा रहने का है, और जिन्दा रहने के लिए तो लोग न जाने क्या क्या करते हैं। फिर धीरे-धीरे आदमी अपने काम का आदी हो जाता है और पसन्द करने लगता है।"

मैंने उसकी ओर आश्चय से देखा, अब भी वह मुसकरा रही थी। मैंने कहा, "क्या एक काम करोगी?"

"आप जो कुछ कहेंगे वह मैं करूँगी, अगर वह करने लायक़

होगा। आज रात के लिए तो मैंने अपने को आपके हाथ बेच दिया है!"

मैं चिल्ला उठा, "रुपए-पैसे के सौदे की बात छोड़ो। मैं एक मनुष्य की हैसियत से तुमको मनुष्य समझते हुए पूछ रहा हूँ—करोगी ?"

इस बार उसने मेरी ओर बड़े आश्चर्य से देखा। शायद वह मुझे सनकी समझती थी, या बहुत सम्भव है उसने मुझे पागल समझा हो। पर इतना निश्चय है कि उसे मुझ पर आश्चर्य अवश्य था। फिर भी उसने मुझसे कहा, "बाबू जी, करने लायक़ काम होगा तो मैं वादा करती हूँ कि करूँगी।"

मैं अधिक भावुक नहीं हूँ। मैंने संसार देखा है, और भावुकता तथा अनुभव में बहुत अन्तर है। इसी लिए मैं आज तक आश्चर्य कर रहा हूँ कि मैंने ऐसा क्यों किया और शायद आप लोग भी आश्चर्य करेंगे। मैंने अपना पर्स निकाला, उससे मैंने सौ रुपए का एक नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "देखो, मैं तुम्हारा नाम नहीं जानता और न जानना ही चाहता हूँ। तुम क्या थीं और आगे चल कर तुम क्या होगी उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि मनुष्य अपने ही सुख-दुख के भार से इतना अधिक लदा हुआ है कि दूसरों के भार को वह नहीं उठा सकता। बहुत सम्भव है कि तुम्हें अपने इस काम में सुख मिलता हो, बहुत सम्भव है कि तुम्हें यह काम मजबूरन करना पड़ता हो, इसकी बाबत मैं तुमसे कुछ न पूछूँगा। हम तुम क्यों मिले, यह एक

पहेली है जिसे शायद मैं कभी भी न सुलझा सकूँगा, और फिर कभी भी क्या हम तुम मिलेंगे, इसको भी मैं नहीं जानता। इतना सब होते हुए भी एक प्रार्थना है और इसे तुम अस्वीकृत न करोगी! तुम कहती हो कि तुम महीने में सत्तर-अस्सी रुपया पैदा कर लेती हो, यह सौ रुपए का नोट लो और एक महीने के लिए तुम अपने इस काम को छोड़ दो। एक महीने के बाद जो तुम्हारा जी चाहे करना।"

इस बार उसकी मुसकराहट लोप हो गई। वह मुख जिस पर कामुकता हँस रही थी एकाएक पीला पड़ गया। मेरे सामने करुणा की एक प्रतिमूर्ति खड़ी थी। उसने धीरे से कहा, "बाबू जी, मैं यह रुपया न लूँगी।"

"क्यों ? क्या तुम अपने काम को इतना पसन्द करती हो कि एक महीने के लिए भी नहीं छोड़ सकतीं ?"

उसका गला भर आया—"हाथ जोड़ती हूँ, बाबू जी ! हाथ जोड़ती हूँ आप यह न कहिए। मैं करूँगी, आप जो कुछ कहते हैं वह करूँगी।" यह कह कर उसने नोट मेरे हाथ से ले लिया। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे।

"अच्छा, अब तुम जा सकती हो !"

उसने कहा, "बाबूजी, यह नहीं सोचा था कि दुनिया में अभी दया, हमदर्दी और इंसानियत बाक़ी है। भगवान आप का भला करें।" इतना कह कर उसने अपना मुख फेर लिया। लाख

कोशिश करने पर भी वह अपनी आँखों से गिरते हुए आँसुओं को मुझसे न छिपा सकी, और वह कमरे के बाहर चली गई।

वह चली गई और मैं सोचता ही रह गया--अरे! किस भगवान से यह मेरा भला करने को कह गई है? उसी भगवान से जो इसे यह घृणित जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर रहा है? उसी भगवान से जो उसे गिराता ही जा रहा है? उसी भगवान से जिसने इसको उठाना तो दूर रहा है, इसे पशु बना दिया है? क्या वह भगवान उसके कहने से मेरा भला कर सकता है?

विक्टोरिया क्रास

हमारे जीवन में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। पता नहीं कहाँ तक मनुष्य स्वयं अपने कर्मों का उत्तरदायी है—यदि कहीं एक नियम है तो वहीं पर उस नियम का इतना स्पष्ट और पक्का अपवाद भी है कि नियम का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। फिर जिसे हम विधि का विधान कहेंगे उसका कोई नियम भी तो नहीं है; उसके जितने नियम हमारे सामने हैं वे सब हमारी कल्पना द्वारा निर्मित हैं। हमारे जीवन में न जाने कितनी शक्तियाँ काम करती रहती हैं, उदाहरण के रूप में हमारी मनःप्रवृत्ति, हमारी परिस्थितियाँ, क्षणिक आवेग और भावनाएँ, समाज के नियम और बन्धन आदि। ये तो वे शक्तियाँ हैं जिन्हें हम स्पष्ट देखते हैं और अनुभव करते हैं—पर एक और भी शक्ति है जिसका हम कभी विश्लेषण नहीं करते। वह शक्ति मानव-नियमों का उपहासात्मक प्रतिवाद है, और इस कारण मनुष्य ने भी उसे उपहासात्मक नाम दिया है—हिन्दी में हम उसे 'धुप्पल' कहते हैं, अंग्रेजी में 'फ्लूक' कहते हैं। इस 'धुप्पल' पर आप मनन कीजिए, और आप उसका अध्ययन अरोचक न पायेंगे। 'धुप्पल' का अध्ययन करने के समय आप ऐसी ऐसी घटनाओं से परिचित हो सकेंगे कि आपको न मनुष्य की शक्ति पर विश्वास रह जायगा, और न भलाई तथा बुराई को ही आप महत्व दे सकेंगे। हाँ, आप जी खोल कर हँस सकेंगे, लेकिन शर्त यह है कि आप ख़ुश-मिज़ाज हों। यदि आप ख़ुश-

मिज़ाज नहीं हैं, या यों कहिए कि आपने मुहर्रम में जन्म लिया है, तो इस धुप्पल की क्या मजाल, जनाब, उस धुप्पल के निर्माता भी आपको नहीं हँसा सकेंगे। रही एक हलकी सी मुसकराहट, वह तो बड़े लोगों के लिए है—और बड़े लोगों की बात मैं चलाने को तैयार नहीं।

हाँ, तो धुप्पल की बात चली थी न ? यह बात क्यों चली, आप यही प्रश्न करेंगे। दुनिया में और भी अनेक महत्व के प्रश्न हैं। आदर्शवादी कहेगा, 'महाशय जी आप किसी आदर्श को लीजिए, संसार उससे शिक्षा ग्रहण करे और जीवन में एक पवित्र साहस के साथ अग्रसर हो। यथार्थवादी कहेगा, 'जनाब, इन बेकार की बातों में क्या रक्खा है ? मनोविज्ञान का विश्लेषण कीजिए और जीवन की घटनाओं में छिपे हुए सत्य को निकालिए, सोशलिस्ट कहेंगे, 'यह क्या बक रहे हो ? किसानों और मज़दूरों की बातें करो, उनके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करो, संसार से उत्पीड़न का नाम उठा दो।' और भी लोग न जाने क्या-क्या कहेंगे। पर मैं साफ़ साफ़ कह दूं कि मैं तो इस समय धुप्पल के फेर में पड़ा हूँ, कल शाम से; और धुप्पल के अलावा मैं इस समय किसी अन्य विषय पर लिखने को तैयार नहीं।

× × ×

कल शाम के समय मैं अपनी आदत से मजबूर होकर फिर एक महीने बाद उसी पुराने रिस्टोराँ में चाय पीने जा पहुँचा। बात यों हुई कि मेरे एक दोस्त आ गए थे। उनसे बातचीत हुई, और

उनके जाने के बाद मुझे एक लिफ़ाफ़ा मिला, जिसमें उन्होंने एक पत्र के साथ पाँच रुपए का एक नोट छोड़ दिया था। ये पाँच रुपए वे मुझसे शर्त में हारे थे, और वह शर्त यह थी कि मैं कहानी नहीं लिख सकता और यदि कभी लिख भी लूं तो वह किसी अच्छे पत्र में न छप सकेगी। मैंने शर्त बदने को तो बद ली थी, पर बाद में मुझे दुःख हुआ, क्योंकि यह शर्त बदना न था बल्कि उन मित्र की जेब से जबरदस्ती रुपया निकाल लेना था। अगर कोई व्यक्ति आपकी प्रतिभा को स्वीकार नहीं करता तो आपका यह कर्तव्य है कि उसे आप अपनी प्रतिभा से प्रभावित करके उससे अपनी प्रतिभा को मनवाएँ, न कि आप उससे शर्त बद कर उसके रुपयों को छीन लें।

मुझे पाँच रुपए मिले, मुफ्त के ही थे। पर वे रुपए जिस तरह से आए थे उसी तरह से ख़र्च भी होने चाहिए। घर से निकला यह सोच कर कि पाँच रुपए किसी संस्था को दान दे दूँ। रास्ते में रिस्टोराँ मिला। पैर रुक गए, या यों कहिए कि मेरी जेब के रुपयों ने मेरे पैर रोक दिए। सोचा, पच्चीस फ़ी सैकड़ा कमीशन हर एक सौदे में जायज़ है—मराठों ने चौथ ली थी, हिन्दी के ग्राहक तक किताबों पर पच्चीस फ़ी सैकड़ा कमीशन माँगते हैं, फिर मैंने ही कौन-सा पाप किया है कि पाँच रुपए में सवा रुपया अपने ऊपर न खर्च करूँ? पैर मुड़े और मैं रिस्टोराँ के अन्दर।

मैंने एक बार रिस्टोराँ का सिंहावलोकन किया, अन्दाज़ा किस मेज़ पर बैठूँ कि एकाएक मेरा हाथ सेल्यूट करने को उठ

गया। यहाँ यह बतला दूँ कि मैं जब यूनिवर्सिटी में था तो ट्रेनिंग कोर का मेम्बर था। एक वर्ष तक सैनिक शिक्षा पाई थी और शायद एक-आध वर्ष और भी सैनिक शिक्षा लेता यदि एक दिन आफ़िसर कमांडिंग ने कंधे पर राइफ़िल लदवा कर चौदह मील तक पैदल रूट मार्च न करवा दिया होता। हाँ, तो सामने एक कोने में मेज़ पड़ी थी और उस पर दो फ़ौजी बैठे हुए चाय पी रहे थे। एक के सीने पर विक्टोरिया क्रास मेडल चमक रहा था। जिस व्यक्ति के विक्टोरिया क्रास लगा हो उसे क्या कलक्टर, क्या कमिश्नर और क्या गवर्नर सबको सलाम करना पड़ता है, फिर भला मैं उसे क्यों न सलाम करता? तै कर लिया कि उन दो फ़ौजियों की मेज़ पर बैठ कर चाय पिऊँ—विक्टोरिया क्रास पाए हुए लोगों से बातें करते हुए उनके साथ बैठ कर चाय पीने का अवसर कोई रोज़ थोड़े ही मिला करता है, और साधारण आदमियों को तो कभी नहीं मिलता।

उसी मेज़ पर जाकर मैं डट गया। उन फ़ौजियों को शायद मेरा उनकी मेज़ पर बैठना बुरा लगा, क्योंकि एक ने आँखें मिचमिचाईं और दूसरे ने अपनी मूँछ पर हाथ फेरा। एक ने खाँसा और दूसरे ने मेज़ पर हाथ पटका। एक ने मुँह बनाया और दूसरे ने नाक सिकोड़ी। मैंने अब अधिक देर चुप रहना उचित न समझा। जिन सज्जन के विक्टोरिया क्रास लगा था उनसे मैंने कहा, "क्या यह विक्टोरिया क्रास आपको इस ग्रेट वार में मिला?"

उन्होंने सिर हिला दिया।

मैंने फिर पूछा, "क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?"

"सुखराम !"

मैंने विक्टोरिया क्रास को ग़ौर से देखते हुए कहा, "आप बड़े वीर आदमी हैं, हमारे देश को आप ऐसे वीरों पर अभिमान होना चाहिए !"

"हूँ", कह कर सुखराम ने आँखें नीची कर लीं।

मैं एक-एक शब्द के उत्तर को सुन कर घबड़ा गया था और उठ कर चलने वाला ही था कि मेरी दृष्टि सुखराम के साथी पर पड़ गई जो मुसकरा रहा था। मुझे घबड़ाया हुआ देख कर उसने कहा, "बाबू साहेब, आप आख़िर चाहते क्या हैं ?"

लड़खड़ाते स्वर में मैंने कहा, "कुछ नहीं, यही जानना चाहता था कि वीरता के किस काम में आपके साथी को विक्टोरिया क्रास मिला।"

सुखराम के साथी ने सुखराम की ओर देखा, इसके बाद उसने मेरी ओर। कुछ मुसकराते हुए उसने कहा, "बाबू साहेब, बतला तो दूँ, लेकिन दो शर्तें हैं, पहली यह कि सुखराम बतलाने दें और दूसरी यह कि आप उस कहानी को सुन कर शक न करें।"

सुखराम ने अपने साथी को घूर कर देखा। उसके साथी ने कहा, "बाबू साहेब ! सुखराम नहीं चाहते कि मैं कुछ बतलाऊँ, अब आप ही समझिए मैं किस प्रकार बतला सकता हूँ ?"

इस समय तक मेरा कौतूहल काफ़ी बढ़ चुका था। जिसने वीरता नहीं की थी वह वीर का गुणगान करना चाहता था, पर

वीर स्वयं ही नहीं चाहता था कि उसका गुणगान किया जाय ! सुखराम क्यों मना कर रहा है, इसे जानने को मैं उत्सुक था। सुखराम के सम्बन्ध की कहानी विचित्र होगी, इतना मैं अनुमान किए हुए था। मैंने सुखराम के साथी से कहा, "जैसी आप की इच्छा, यदि आपके साथी नहीं चाहते हैं तो न सही।" यह कह कर मैंने बॉय को आवाज़ दी और तीन ग्लास बियर के मँगवाए।

कुछ थोड़ा सा इन्कार करने के बाद सुखराम और सुखराम के साथी ने बियर के ग्लास ख़ाली कर दिए। इधर-उधर की बातें हो रही थीं। उठते हुए मैंने सुखराम के साथी से कहा, "यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि मैं आपकी उस कहानी को न जान सका, अच्छा अब मैं चलूँगा।"

बियर के ग्लासों ने सुखराम और सुखराम के साथी की गम्भीरता को दूर कर दिया था, थोड़ी देर में हम लोग पक्के दोस्त हो गए थे। सुखराम के साथी ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बिठला लिया। "बाबू साहेब, अब चाहे सुखराम कहने दें, चाहे न कहने दें, लेकिन मैं तो आपको कहानी सुनाऊँगा ही !"

सुखराम भी मुसकराया, "अरे सुना भी दो, कौन मेरा बिगड़ जायगा।"

× × × ×

सुखराम के साथी ने आरम्भ किया, "बाबू साहब, हम लोग एक ही गाँव के रहनेवाले हैं। जब लड़ाई छिड़ी, उस वक़्त मैं फ़ौज में था। पहले तो समझा लड़ाई जल्दी ही ख़तम हो जावेगी, लेकिन

वह काहे को खतम होने की, और जरमनी ने दाँत खट्टे कर दिए। हम लोग न होते तो बाबू साहेब, अँगरेज़ शर्तिया यह लड़ाई हार जाते, अरे हमीं लोगों ने तो यह लड़ाई जीती।

"हाँ, तो जब लड़ाई शुरू हुई तब भरती भी शुरू हुई। और जैसे-जैसे लड़ाई ज़ोर पकड़ती गई वैसे-वैसे भरती ज़ोर पकड़ती गई। एक दिन भरती करने वाले पहुँचे हमारे गाँव, और उनके सामने पड़ गए सुखराम। सुखराम अपनी जोरू से पिट के नदी में डूबने जा रहे थे। सो भरती करनेवालों ने देखा सुखराम को और सुखराम ने देखा भरती करनेवालों को। सुखराम की समझ में बात आ गई कि भरतीवाले जान के गाहक हैं, और भरती-वालों की समझ में यह बात आ गई कि सुखराम ज़िन्दगी से आजिज़ हैं। बस फिर क्या था, सुखराम भरती हो गए।

"छै महीने तक क़वायद सिखाई गई और सातवें महीने लाद दिए गए सुखराम जहाज़ पर लड़ने के लिए। वहाँ ये हम लोगों को मिले। सुखराम मुझे देख के बड़े खुश हुए। लगे कहने कि दुनिया घूम रहे हैं, फ़ौजी हैं, लौट कर मारे बूट के, मारे बूट के जोरू का कचूमर निकाल देंगे। ये बातें कर ही रहे थे कि हम लोगों को फ़ायरिंग लाइन में जाने का हुक्म आया। फ़ायरिंग लाइन में जाने का हुक्म पाते ही हमारे बटेलियन के लोगों के चेहरे पीले पड़ गए लेकिन सुखराम के चेहरे पर शिकन नहीं। आप नहीं जानते बाबू साहब कि ऐसा क्यों था? बात यह थी कि सुखराम बेचारे क्या जानें कि फ़ायरिंग लाइन क्या बला है?

इनके लिए तो जैसे हिन्दुस्तान से विलायत आना वैसे ही बन्दरगाह से फ़ायरिंग लाइन पर जाना।

"हम लोग ट्रेंचों में पहुँचे, और गोलाबारी शुरू हुई। अब सुखराम की हालत देखिए, इन्होंने रोना शुरू किया। ज़िन्दगी में तोप की आवाज़ सुनी न थी, यहाँ जो तोपें और बन्दूकें चलती देखीं, तो बौखला गए। इधर गोली चली और उधर सुखराम भागे, पर मैंने सुखराम को पकड़ लिया। ट्रेंचों के बाहर निकलना और मर के गिर पड़ना बराबर ही है। लेकिन सुखराम बौखलाए हुए, उन्हें यह पता कहाँ? हम लोगों ने लाख समझाया, पर इनकी समझ में बात न आई। समझते तब जब रोने और चिल्लाने से इन्हें फ़ुरसत मिलती। अन्त में हम लोगों ने इन्हें बाँध दिया।

"तीन दिन तक ये बँधे रहे। इन तीन दिनों तक हमें किन किन मुसीबतों का सामना करना पड़ा यह हमीं जानते हैं! चौथे दिन गोलाबारी ने भयानक रूप धारण किया। दुश्मन ने हमारी ट्रेंचों पर धावा बोला और हम लोग सब के सब उनको रोकने में लग गए। सुखराम को यह मौक़ा मिला, किसी तरह इन्होंने अपनी रस्सी तुड़ाई, और रस्सी तुड़ा कर ट्रेंच के ऊपर चढ़ गए और बेतहाशा पीछे भागे।

"बाबू साहेब! सुखराम की ऐसी बेशरम ज़िन्दगी भी हम लोगों ने नहीं देखी। चारों तरफ़ से गोलियों की बौछारें हो रही हैं, तोप के गोले गिर रहे हैं, बम फूट रहे हैं और सुखराम इन सबों के बीच से सही-सलामत भागे चले जा रहे हैं! एक गोली

कान से बातें करती हुई निकल गई, तोप के गोले से जो ज़मीन फट के उछली, उसी के साथ इन्होंने भी दस फ़ुट की छलाँग मारी। इनका साफ़ा गोलियों से चलनी हो रहा था, जूते की एड़ियों में गोलियाँ चिपकी हुईं, वरदी गोलियों से छिदी हुई, और सुखराम के बदन पर एक ख़राश तक नहीं !

" सौ गज़ की दौड़ें तो आपने देखी होंगी, लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूँ कि तेज़ से तेज़ दौड़नेवाला उस दिन इनका मुकाबिला नहीं कर सकता था। बीच-बीच में गढ़े थे और वहाँ इन्होंने जो लांगजम्प किया है, उसके आगे दुनिया का रिकार्ड मात है, क्योंकि एक दफे ये क़रीब इक्कीस फ़ीट चौड़ा गढ़ा फाँद गए थे। और इन्होंने जो कलाबाज़ियाँ खाईं, अगर आज ये उनको दुहरावें तो किसी भी सरकस में हज़ार पाँच सौ रुपया महीना पैदा कर सकते हैं। हम लोग चिल्लाते ही रह गए लेकिन सुखराम भला काहे को रुकने के ?

" अब सुखराम डेंजर-ज़ोन के बाहर निकले। लेकिन उनका दौड़ना बन्द नहीं हुआ। डेंजर-ज़ोन के बाद कन्डैल साहेब का ख़ीमा गड़ा था। तारबर्क़ी हो रही थीं, और कन्डैल साहब दूरबीन लगाए बैठे थे। जब सुखराम ख़ेमे के पास आए तो कन्डैल साहब ने चिल्ला कर कहा, 'कहाँ जाता है ?' सुखराम एक सेकिण्ड के लिए रुके, हाँफते हुए इन्होंने कहा, 'साहब, गोली ! गोली !' और यह कहते हुए सुखराम बेहोश होकर गिर पड़े।

" यहां तक तो जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। सुखराम किस

तरह से बच आए, कौन बतलाए। लेकिन मालूम होता है भगवान अच्छा ख़ासा मज़ाक करने पर तुले हुए थे। कन्डैल साहब ने दौड़ कर सुखराम को ख़ुद अस्पताल भिजवाया। इसके बाद उन्होंने अपने खरीते में लिखा, 'सुखराम ने बहुत बड़ी बहादुरी का काम किया। जिस वक़्त ट्रेंचों में एम्यूनीशन ख़त्म हो गया और ट्रेंचों से यहाँ तक की कम्यूनिकेशन काम नहीं कर रही थी, यह आदमी अपनी जान पर खेल कर ट्रेंचों के बाहर निकल कर यहाँ एम्यूनीशन ख़तम हो जाने की इत्तिला देने आया। ताज्जुब हो रहा है कि यह शख़्स इतनी दूर ज़िन्दा कैसे चला आया—हज़ारों गोलियों के निशान इसके बदन पर के कपड़ों पर हैं, पर उसके एक भी गोली नहीं लगी। शायद इसके इस विल-फ़ोर्स ने कि किसी न किसी तरह एम्यूनीशन ख़तम होने की इत्तिला देनी ही चाहिए, इसे ज़िन्दा रक्खा। यहाँ पर हम परमेश्वर का हाथ देखते हैं। साथ ही हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि सुखराम को उसकी बहादुरी के लिए विक्टोरिया क्रास दिया जाय।' और बाबू साहब आप देखते ही हैं कि सुखराम को विक्टोरिया क्रास मिल गया।"

मैं मुसकराया। पर न जाने मैंने क्यों यह प्रश्न कर दिया, "और इनकी बीबी का क्या हाल है?"

सुखराम का साथी सुखराम का हाथ पकड़ कर उठ खड़ा हुआ। हँसते हुए उसने कहा, "बीबी! अरे हाँ, अब इनकी बीबी जब इन्हें पीटने लगती है, तब ये विक्टोरिया क्रास जेब में रख लेते हैं।"

एक विचित्र चक्कर है !

"एक विचित्र चक्कर है, और उस चक्कर की चाल भी विचित्र है। आज मिले और कल बिछुड़े, फिर क्या कभी मिलना होगा? कौन कह सकता है--कौन जानता है? नित्य ही हमारे सामने कितने प्राणी आते हैं; कुछ वर्ष, कुछ मास, कुछ सप्ताह, कुछ दिन, कुछ घण्टे और कभी-कभी कुछ पल जीवित रह कर वे मर जाते हैं—कम से कम हमारे वास्ते, क्योंकि फिर हम उन्हें नहीं देखते, हम उनसे नहीं मिलते!"

देवेन्द्र ने अपने मस्तक पर हाथ फेरा, शायद वह कुछ सोच रहा था। उसने फिर कहा—'हाँ, संयोग का नाम जीवन और वियोग का नाम मृत्यु है। बुद्ध का क्षणवाद कहता है—हम प्रत्येक क्षण जन्म लेते हैं और प्रत्येक क्षण मरते हैं। आइन्स्टाइन की 'थियोरी ऑफ़ रिलेटीविटी' कहती है—तुम अमर हो, संसार नश्वर है। संसार इस लिए है कि तुम हो। संसार के हिसाब से तुम मरते हो और तुम्हारे हिसाब से संसार मरता है। एक ही बात, अन्त में एक ही तथ्य। चाहे वेदान्त को लो, चाहे बुद्ध को लो और चाहे आइन्स्टाइन को लो; कहने का ढङ्ग अलग-अलग, पर बात अन्त में एक ..।"

देवेन्द्र अभी कुछ और कहता यदि नौकर ने आकर उसके सामने एक तार न रख दिया होता।

उस कमरे में सात आदमी थे और वह कमरा देवेन्द्र के मकान का था, जिसको खँडहर कहना अनुचित न होगा, एकमात्र सबूत कमरा था। कमरा काफ़ी बड़ा था और यह बतलाता था कि देवेन्द्र का मकान कभी महल रहा होगा। एक निर्धन कलाकार अर्थाभाव की कठिनाइयों से घिरे रहने पर जिस प्रकार अपने कमरे को सजा सकता है, उसी प्रकार वह कमरा सजाया गया था। एक पलँग, एक ट्रंक, एक अलमारी, एक मेज, दो कुरसियाँ, एक फटा हुआ साफ़ फ़र्श और फ़र्श पर दो-चार गावतकिये और इन सबों के साथ सत्तर वर्ष का एक बूढ़ा नौकर, जिसकी कमर झुक गई थी और बत्तीसों दाँत गिर गए थे—वैभव के स्वामियों का उपहास करने वाली उनकी निर्धन सन्तान की सम्पत्ति थी।

हम सब लोग फ़र्श पर बैठे थे। हम लोगों के सामने चीनी की तश्तरियों में भुने हुए चने थे और बातों का सिलसिला था। देवेन्द्र ने बैठे ही बैठे तार खोला, उसके बाद उसने तार अपने सामने रख लिया। उसने उसी तरह शान्त भाव से कहा—"अभी जो तार आया है, वह भी विचित्र है। वह यह कहता है कि देवेन्द्र, जैसा आप लोग उसे अभी तक जानते आए हैं, मर गया और उसके स्थान पर एक नए देवेन्द्र ने जन्म लिया है, जिसके पास चार लाख की सम्पत्ति है। आप लोग यह तार स्वयं पढ़ सकते हैं।" इतना कह कर उसने वह तार हमारे सामने फेंक दिया।

मैंने तार उठा लिया, उसमें लिखा था—"कमला का देहान्त हो

गया। वह तुम्हारे नाम चार लाख रुपया छोड़ गई, तार को देखते ही चले आओ।"

मैंने पूछा—"यह कमला कौन थी ?"

देवेन्द्र मुसकराया—"जिस समय मैंने बात आरम्भ की थी, मेरे ध्यान में कमला ही थी। कमला को तुम नहीं जानते—मैं भी तो उसे नहीं जानता था। बात बहुत पुरानी हो गई, दस वर्ष का समय कुछ कम नहीं होता ! पर मेरे लिए वह अभी कल की घटना है—कल की ही क्यों, आज की, अभी की। कमला को मैं बहिन कहता था, शायद वह मेरी दूर की बहिन होती भी रही हो। हम दोनों पड़ोसी थे, सजातीय थे और सम्बन्धी थे। साथ-साथ खेले थे, हँसे थे और रोए थे। एक दिन कमला के पिता के दरवाज़े पर बड़ी धूम-धाम हुई, बाजे बजे, नाच हुआ, बारात आई। मुझे याद है कि मैं कितना प्रसन्न था—कमला का विवाह था। और कमला भी प्रसन्न थी। अप्रसन्न होने का कोई कारण भी न था। कमला दस वर्ष की थी और मैं चौदह वर्ष का था, वासना का भाव उत्पन्न ही न हुआ था। हम दोनों में वासना का भाव उत्पन्न होने के पहले ही कमला का विवाह हो गया था। दो वर्ष बाद मैं भी कालेज में पढ़ने के लिए प्रयाग चला गया।

"हाँ, कमला का विवाह हो गया था और मैं अविवाहित था। यहाँ मैं यह भी बतला दूँ कि कमला आज-कल की पढ़ी-लिखी लड़कियों की तरह न थी। उसने न उपन्यास पढ़े थे और न स्त्रियों के अधिकार पर लिखी हुई पुस्तकें। वह आदर्श हिन्दू-कन्या थी,

अन्ध-विश्वास के वातारण में पली हुई। व्रत और त्यौहार वह मानती थी, देवी-देवताओं पर उसे विश्वास था। और मैं ? मैं अर्द्ध-नास्तिक था। यदि मैं ईश्वर और धर्म का खण्डन नहीं करता था तो उन पर विश्वास भी नहीं करता था।

"समय बीतता गया, मैंने एम्० ए० पास किया, उसके बाद पढ़ना छोड़ कर मैं घर चला गया। माताजी जीवित न थीं, पिताजी ने विवाह की बात सोची, पर मैंने बिवाह करने से इनकार कर दिया—मैं तो आधुनिक सभ्यता के रङ्ग में रँगा था। मैंने कहा, 'प्रेम करके विवाह करने में मैं विश्वास करता हूँ, जब तक किसी स्त्री से प्रेम नहीं हो जाता, मैं विवाह न करूँगा।'

"पिताजी मुसकराये, वे मुझे जानते थे, शायद इतना, जितना मैं स्वयं अपने को न जानता था। उन्होंने कहा—'ठीक है, जो कुछ तुम कहते हो उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम निर्धन हो और निर्धन से प्रेम करनेवाला कोई नहीं होता—यह याद रखना। फिर निर्धन को विवाह भी न करना चाहिए, मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मैंने तुम्हारे विवाह की बात सोची ही क्यों ? तुमने मेरी निर्धनता पाई है और मेरा झूठा अभिमान भी पाया है। भूखे मर जाओगे, लेकिन तुम नौकरी न करोगे—मैं यह जानता हूँ। इस हालत में तुम्हारा अकेले भूखों मरना अच्छा होगा।

"इसके बाद क्या-क्या हुआ, मुझे याद नहीं, शायद उसे याद रखने की कोई आवश्यकता भी नहीं। मैं किस प्रकार साहित्यिक

बना—किस प्रकार मेरी ख्याति हुई, ये सब विगत बातें हैं, जिन्हें मैं भूल चुका हूँ। इसके बाद एक दिन कमला अपने घर आई—घर में कुहराम मचा था। कमला के आने पर घर में हर्ष के स्थान पर रुदन क्यों हो रहा था, शायद आप लोग यह जानना चाहें, यह इस लिए कि कमला विधवा होकर आई थी।

"जो कमला लौटी थी वह पहली कमला से भिन्न थी। पहली कमला मेरे कितने निकट थी और यह कमला मुझसे कितनी दूर। पहली कमला दस वर्ष की चपल बालिका थी, जो मुझे चिढ़ाती थी, मुझे मारती थी और मार खाने पर रो देती थी और यह कमला मेरी आँख से आँख न मिला सकती थी, गम्भीरता की प्रति-मूर्ति थी। मैं उसको भूल गया था और वह मुझे भूल गई थी। उस दिन जब मैंने कमला का नाम सुना, पुरानी बातें एकाएक याद हो आईं। मैं कई दिन बाद उसके घर गया। क्यों गया? शायद उसको देखने ही। बहुत देर तक उसकी माता से बातें होती रहीं, पर वह न दिखलाई दी। मैं व्यग्र हो गया, उठ कर चलनेवाला ही था कि वह नीचे आई—किसी काम से। मैंने उसे देखा, पहचानने में कुछ देर अवश्य लगी। उसने भी मुझे देखा—एकटक उसने मुझे कुछ देर तक देखा, उस के बाद एक विषाद भरे स्वर में उसने केवल इतना ही कहा—'देवेन्द्र!'

"सफ़ेद धोती पहने हुए उस तरुणी को देखकर मैं थोड़ी

देर के लिए स्तब्ध रह गया। उसके बाद मैंने साहस किया—'कमला, अच्छी तरह से तो हो?'

"एक रूखी मुस्कराहट के साथ उसने कहा—'हाँ, अच्छी तरह से हूँ!' और वह चली गई।

"इसके बाद कमला मुझे प्रायः दिखलाई पड़ती थी, मेरे पास बैठती थी और धीरे-धीरे उसे पुरानी बातें याद हो आईं। कमला के दुःख को भुलाने के लिए मैं उसे तरह-तरह की पुस्तकें दे आया करता था, वह उन्हें पढ़ती थी और वह अधिक से अधिक पुस्तकें माँगती थी। कभी-कभी जब मैं अपने घर पर गाया करता था तो कमला मेरा गाना सुनने के लिए मेरे यहाँ चली आती थी—और कमला के आते ही मैं गाना बन्द करके उससे बातें करने लगता था। कमला मेरी कविताएँ पढ़ती थी, समझ न पाती थी। कभी-कभी वह मुझसे कविताएँ सुनती थी, अर्थ भी समझती थी और अर्थ समझकर कहती थी—'देवेन्द्र, तुम यह सब कैसे लिख लेते हो?' उसके इस प्रश्न से मुझे कितनी प्रसन्नता होती थी।

"धीरे-धीरे मेरे हृदय में प्रेम ने जन्म लिया। कमला अनिन्द्य सुन्दरी न थी, पर वह कुरूपा भी न थी। साथ ही उसकी आत्मा की सुन्दरता से मैं मुग्ध हो गया। आप लोगों ने यदि मेरी तीन वर्ष पहले की कविताएँ पढ़ी हों, तो आप समझ सकेंगे कि मैंने किस तन्मयता के साथ प्रेम किया। उफ़ मेरा वह प्रेम! कितनी मादक बेहोशी थी! आज भी उस बेहोशी को पाने के

लिए मैं अपना सर्वस्व निछावर कर सकता हूँ। जीवन के शत-शत ज्ञान उस बेहोशी पर बलिदान हैं। मैं आप लोगों से सच कहता हूँ कि दुनिया में प्रेम की बेहोशी से बढ़ कर कोई नशा नहीं है। जिसने प्रेम नहीं किया उसने संसार का एक बहुत बड़ा सुख नहीं पाया। कमला को देखते ही हृदय धड़कने लगता था, आत्मा प्रकाशमान और पुलकायमान हो उठती थी। आँखें झूम उठती थीं।

" हिन्दी की सारी पत्र-पत्रिकाएँ उन दिनों मेरी कविताओं से युक्त होती थीं। और कमला उन पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ती थी। मेरी कोई कविता पढ़ कर कमला मेरे यहाँ आती थी। मेरे मुख से उस कविता को सुनती थी, और अर्थ समझते हुए भी वह मुझसे उस कविता का अर्थ समझती थी। एक पल के लिए—इस प्रकार कि मालूम पड़े अचानक ही ऐसा हुआ—हम दोनों की आँखें मिलती थीं और एक दूसरे के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न करती थीं, और फिर अलग हो जाती थीं। उसके बाद वह अपना मुख झुका लेती थी। उस समय मैं उसके मुख पर स्पष्ट गहरी वेदना के भाव देखता था, और उसकी वह वेदना मुझे निष्प्रभ कर देती थी।

"एक दिन मैं कमला के घर गया, अपनी एक नई कविता सुनाने के लिए। कमला के माता-पिता घर पर न थे। वे कहीं गए थे, कमला अकेली थी। उसने मुझे बिठलाया, इसके बाद मैंने कमला को अपनी कविता सुनाई। कविता को सुनकर कमला से

एक निश्वास छूट पड़ा। आप लोग नहीं जानते कि उस समय मुझ पर कैसी बीत रही थी। मैंने कमला का हाथ पकड़ लिया और धीरे से मैंने कहा—'कमला!'

"जानता हूँ कि कमला का हृदय तेज़ी के साथ धड़क रहा था, पर मेरे हाथ पकड़ते ही उसका सारा शरीर सिहर उठा, ज्ञान की एक विद्युत् सी उसके सारे शरीर में दौड़ गई। धीरे से उसने मेरा हाथ झटक दिया। उसके इस व्यवहार से मैं काँप उठा, क्षणिक वासना को कमला की दृष्टि की तीव्रता ने नष्ट कर दिया। मैंने कहा—'कमला! मुझसे क्या कुछ अनुचित हो गया?'

"कमला मुझसे कुछ हट कर कुरसी पर बैठ गई। मुझे बैठने का सङ्केत करते हुए उसने कहा—'नहीं देवेन्द्र, तुम से कुछ भी अनुचित नहीं हुआ। बैठ जाओ, आज तुमसे कुछ बातें करूँगी—और ये बातें जीवन से सम्बद्ध हैं, इन पर भविष्य निर्भर है। पहिला प्रश्न यह है—क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो?"

"हाँ"—मैंने उत्तर दिया।

"कमला मुसकराई। 'मैं जानती थी, तुम्हारी कविताएँ पढ़ कर कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि तुम प्रेम करते हो। किससे प्रेम करते हो; यह मुझे छोड़ कर कोई नहीं जानता था और न कोई जान ही सकता था।। देवेन्द्र, एक बात और भी बतला दूँ। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ। इतना ही अधिक, जितना तुम मुझसे प्रेम करते हो। अब दूसरा प्रश्न और है देवेन्द्र! क्या प्रेम में वासना का होना आवश्यक है?'

"मैंने कहा—'शायद नहीं, पर वासना को दूर रखना बहुत कठिन है, संयम का काम है।'

"कमला मेरी बात सुन कर हँस पड़ी। 'बहुत कठिन है—संयम का काम है? देवेन्द्र, यहीं तुम भूलते हो। प्रेम में वासना का न होना असम्भव है, इस बात को मैं जान गई हूँ। आत्मिक मिलन और शारीरिक मिलन एक साथ ही चलते हैं। उन्हें कोई नहीं रोक सकता। समझे देवेन्द्र! अब क्या हो? प्रश्न यह है। मैं जानती हूँ कि मुझे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं, भगवान के सामने मैं एक व्यक्ति के साथ बँध चुकी हूँ। एक पथ मेरा निर्धारित हो चुका है। देवेन्द्र, उस पथ से हटना मेरे लिए असम्भव है, बहुत बड़ा पाप है, मैंने तुमसे प्रेम क्यों किया? तुम मेरे जीवन से अलग होकर फिर मेरे जीवन में क्यों आए? शायद भगवान मेरी परीक्षा ले रहे हैं, मेरे हृदय की दुर्बलता का सहारा लेकर, मुझे गिराने का प्रयत्न करके मेरी आत्मा के बल को जाँचना चाहते हैं। देवेन्द्र, इस परीक्षा में मुझे उत्तीर्ण होना ही पड़ेगा—समझे।'

"मैं चित्र-लिखित सा कमला की बातें सुन रहा था। मैंने कहा—'हाँ!'

'इसमें मैं तुम्हारी सहायता चाहती हूँ देवेन्द्र! जानते हो, मैं क्या करना चाहती हूँ, मैं एक सप्ताह के अन्दर ही यहाँ से चली जाऊँगी। इस एक सप्ताह के लिए तुम यहाँ से बाहर चले जाओ। तुम्हारे सामने मैं निर्बल हो जाती हूँ, मेरा

प्रेम मेरे धर्म पर विजय पाने लगता है, हृदय कर्तव्य के नियन्त्रण को स्वीकार नहीं करता। तुम मुझे वचन दो कि एक सप्ताह के लिए तुम यहाँ से चले जाओगे।'

"मैंने कह दिया—'हाँ, मैं चला जाऊँगा।'

"कमला का मुख खिल उठा—'और देवेन्द्र, दूसरी बात यह है कि फिर तुम मुझसे मिलने का प्रयत्न न करना और न कभी कोई पत्र ही लिखना। तुम समझ लेना कि मैं मर गई—ज़रा सी बात है, कोई मुश्किल नहीं है। और देवेन्द्र!'...इतना कह कर वह कमरे के बाहर चली गई।

"मैं चला आया। घर आकर ही मैं यात्रा पर निकल पड़ा। एक सप्ताह के लिए निकला था, पर एक वर्ष तक मैं घूमता रहा। इस बीच में मेरे पिता का देहान्त हो गया, घर गिर गया और मैं भी दरिद्र हो गया। पर मुझे इसकी कोई चिन्ता न थी। मेरा जीवन सूना हो गया था—मेरा सर्वस्व लुट गया था। फिर इन सब की मुझे कोई परवाह क्यों होती?

"पर देखता हूँ, कोई भाव चिरस्थायी नहीं रहता। मैं कमला को भूलने लगा—भूलने क्यों लगा, भूल ही गया। मेरे सामने सारा संसार था, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। संसार की चहल-पहल से भरी अनुरक्ति ने अन्त में मेरी विरक्ति पर विजय पाई और मैं यहाँ लौट आया। यह तीसरा वर्ष है। एक-आध बार सुना, कमला का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, वह बीमार है, मरणासन्न है। सोचा, जाकर देख आऊँ, पर नहीं गया। कमला की यही इच्छा

थी। कमला के पिता कहते थे, कमला अपनी दवा ही नहीं करती—मैं जानता था कि वह क्यों अपनी दवा नहीं करती। मुझे यह सुन कर कितना दुःख होता था, मैं नहीं कह सकता। पर मैं सच कहता हूँ, उसी समय जब मैं कमला के यहाँ चल कर उसे समझाने-बुझाने का प्रयत्न करने का इरादा करता था, मुझे कमला का यह वाक्य याद आ जाता था—'तुम समझ लेना कमला मर गई।' और मैं रुक जाता था। फिर कमला ने भी तो मुझे कभी नहीं बुलाया। मैं जानता हूँ वह क्यों मरी। मैं जानता हूँ कि प्राणों की बाज़ी लगा कर उसके कर्तव्य ने उसके हृदय पर विजय पाई। प्रेम की आग में वह जली—वह मर गई, पर उसने उफ़ तक न की! कितने साहस का काम था। और एक स्त्री ही ऐसा कर सकती थी—इतना संयम, इतनी तपस्या एक स्त्री में ही हो सकते हैं।"

देवेन्द्र ने तार जेब में रख लिया। "मैं आज रात की गाड़ी से जा रहा हूँ—कमला मर गई, सब समाप्त हो गया। मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुल रहा है। पता नहीं, उस पृष्ठ में क्या लिखा है।

हम सब लोगों ने देवेन्द्र से बिदा ली।

× × × ×

एक वर्ष तक देवेन्द्र का कोई पता न लगा। एक दिन मैं सड़क पर घूमता हुआ चला जा रहा था। एकाएक मैं चौंक उठा। एक शानदार सिडेन-कार मेरी बग़ल में आकर खड़ी हो गई। मैं चिल्ला उठा—" अरे देवेन्द्र ! तुम कब आए ? "

मेरा हाथ पकड़ कर उसने मुझे कार पर बिठला लिया, कार चल दी। "मैं कल आया। पीछे की सीट पर जिन देवी जी को देखते हो वे मेरी धर्मपत्नी हैं। हिन्दी की प्रमुख लेखिका श्रीमती इन्दिरा देवी का नाम तो तुमने सुना ही होगा—आओ, मैं तुम्हारा उनसे परिचय करा दूँ।"

परिचय हो जाने के बाद मैंने देवेन्द्र से धीरे से कहा—"तुम विवाह कर लोगे, यह मैंने सोचा तक न था!"

"क्या करूँ, कमला ने मेरे वास्ते एक पत्र छोड़ा था, उसमें उसने लिखा था कि यदि मैं विवाह न कर लूँगा, तो उसकी आत्मा को शान्ति न मिलेगी। समझे!"

देवेन्द्र के मुख से कुछ दुर्गन्ध आ रहा थी—मैंने पीछे फिर कर देखा, ह्वाइट हार्स की एक बोतल पीछे सीट के नीचे रक्खी थी। मैंने एक रूखी मुस्कराहट के साथ कहा—"समझा! तुम शराब भी पीने लगे हो!"

देवेन्द्र हँस पड़ा—"एक विचित्र चक्कर है—और उस चक्कर की चाल भी विचित्र है......"

मैं चिल्ला उठा—"देवेन्द्र, ज़रा कार तो रोको।"

देवेन्द्र ने कार रोक दी और मैं कार से उतर पड़ा। मैंने इतना ही कहा—"देवेन्द्र, तुम बड़े नीच हो।"

पता नहीं, देवेन्द्र ने यह बात सुनी या नहीं, क्योंकि कार तेज़ी के साथ आगे बढ़ गई थी।

मुग़लों ने सल्तनत बख़्श दी

हीरोजी को आप नहीं जानते, और यह दुर्भाग्य की बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरोजी का भी है। कारण, वह बड़ा सीधा-सादा है। यदि आपका हीरोजी से परिचय हो जाय तो आप निश्चय समझ लें कि आपका संसार के एक बहुत बड़े विद्वान से परिचय हो गया। हीरोजी को जानने-वालों में अधिकांश का मत है कि हीरोजी पहले जन्म में विक्रमा-दित्य के नव-रत्नों में एक अवश्य रहे होंगे और अपने किसी पाप के कारण उनको इस जन्म में हीरोजी की योनि प्राप्त हुई। अगर हीरोजी का आपसे परिचय हो जाय तो आप यह समझ लीजिए कि उन्हें एक मनुष्य अधिक मिल गया, जो उन्हें अपने शौक़ में प्रसन्नतापूर्वक एक हिस्सा दे सके।

हीरोजी ने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरोजी की दुनिया मौज और मस्ती की ही बनी है। शरा-बियों के साथ बैठ कर उन्होंने शराब पीने की बाज़ी लगाई है और हरदम जीते हैं। अफ़ीम के आदी नहीं हैं, पर अगर मिल जाय तो इतनी खा लेते हैं, जितनी से एक ख़ान्दान का ख़ान्दान स्वर्ग की या नरक की यात्रा कर सके। भंग पीते हैं तब तक, जब तक उनका पेट न भर जाय। चरस और गाँजे के लोभ में तो साधू बनते-बनते बच गए। एक बार एक आदमी ने उन्हें संखिया खिला दी

थी, इस आशा से कि संसार एक पापी के भार से मुक्त हो जाय। पर दूसरे ही दिन हीरोजी उसके यहाँ पहुँचे। हँसते हुए उन्होंने कहा—"यार, कल का नशा नशा था। राम दुहाई, अगर आज भी वह नशा करवा देते तो तुम्हें आशीर्वाद देता।" लेकिन उस आदमी के पास संखिया मौजूद न थी।

हीरोजी के दर्शन प्रायः चाय की दूकान पर हुआ करते हैं। जो पहुँचता है, वह हीरोजी को एक प्याला चाय का अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे तो हीरोजी एक कोने में आँखें बन्द किए हुए बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगों में बातें शुरू हो गई, और हरिजन-आंदोलन से घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलि पर। पण्डित गोवर्धन शास्त्री ने आमलेट का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—"भाई, यह तो कलियुग है। न किसी में दीन है न ईमान। कौड़ी-कौड़ी पर लोग बेईमानी करने लग गए हैं। अरे अब तो लिख कर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपने वचन निभाते थे, सुरों और नरों की तो बात ही छोड़ दीजिए। दानवराज बलि ने वचनबद्ध होकर सारी पृथ्वी दान कर दी थी। पृथ्वी ही काहे को, स्वयं अपने को भी दान कर दिया था।"

हीरोजी चौंक उठे। खाँस कर उन्होंने कहा—"क्या बात है? ज़रा फिर से तो कहना!"

सब लोग हीरोजी की ओर घूम पड़े। कोई नई बात सुनने को मिलेगी, इस आशा से मनोहर ने शास्त्रीजी के शब्दों को दुहराने

का कष्ट उठाया—"हीरोजी ! ये गोवर्धन शास्त्री जो हैं, सो कह रहे हैं कि कलियुग में धर्म-कर्म सब लोप हो गया। त्रेता में तो दैत्यराज बलि तक ने अपना सब कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान कर दिया था।"

हीरोजी हँस पड़े—"हाँ, तो यह गोवर्धन शास्त्री कहनेवाले हुए और तुम लोग सुननेवाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कह रहे हैं त्रेता की बात, अरे तब तो अकेले बलि ने ऐसा कर दिया था ; लेकिन मैं कहता हूँ कलियुग की बात। कलियुग में तो एक आदमी की कही हुई बात को उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती गई और यद्यपि वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गई, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।"

हम लोग आश्चर्य में आ गए। हीरोजी की बात समझ में नहीं आई, पूछना पड़ा—"हीरोजी, कलियुग में किसने इस प्रकार अपने वचनों का पालन किया ?"

"लौंडे हो न !" हीरोजी ने मुँह बनाते हुए कहा—"जानते हो मुग़लों की सल्तनत कैसे गई ?"

"हाँ ! अँगरेज़ों ने उनसे छीन ली।"

"तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लोग लौंडे हो। स्कूली किताबों को रट-रट बन गए पढ़े-लिखे आदमी। अरे मुग़लों ने अपनी सल्तनत अँगरेज़ों को बख़्श दी।"

हीरोजी ने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया ? आँखें कुछ अधिक खुल गईं। कान खड़े हो गए। मैंने कहा—"सो कैसे ?"

"अच्छा तो फिर सुनो!" हीरोजी ने आरम्भ किया—"जानते हो, शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की शाहज़ादी रौशनआरा एक दफ़े बीमार पड़ी थी, और उसे एक अँगरेज़ डाक्टर ने अच्छा किया था। उस डाक्टर को शाहंशाह शाहजहाँ ने हिंदुस्थान में तिजारत करने के लिए कलकत्ते में कोठी बनाने की इजाज़त दे दी थी।"

"हाँ, यह तो हम लोगों ने पढ़ा है।"

"लेकिन असल बात यह है कि शाहज़ादी रौशनआरा, वही शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की—हाँ वही शाहज़ादी रौशनआरा एक दफ़े जल गई। अधिक नहीं जली थी। अरे हाथ में थोड़ा-सा जल गई थी, लेकिन जल तो गई थी और थी शाहज़ादी। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य बुलाए गए। इलाज किया गया। लेकिन शाहज़ादी को कोई अच्छा न कर सका—न कर सका। और, शाहज़ादी को भला अच्छा कौन कर सकता था? वह शाहज़ादी थी न! सब लोग लगाते थे लेप, और लेप लगाने से होती थी जलन। और तुरंत शाहज़ादी ने धुलवा डाला उस लेप को। भला शाहज़ादी को रोकनेवाला कौन था। अब शाहंशाह सलामत को फ़िक्र हुई! लेकिन शाहज़ादी अच्छी हो तो कैसे? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

"उन्हीं दिनों एक अँगरेज़ घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनियाँ देखे हुए, घाट-घाट का पानी पिए हुए, पूरा चालाक और मक्कार। उसको शाहज़ादी की बीमारी की ख़बर लग गई। नौकरों को घूस

देकर उसने पूरा हाल दरियाफ़्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहज़ादी जलन की वजह से दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शाहंशाह सलामत के पास पहुँचा। कहा कि डाक्टर हूँ। शाहज़ादी का इलाज उसने अपने हाथ में ले लिया। उसने शाहज़ादी के हाथ में एक दवा लगाई। उस दवा से जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुए हाथ में ठंढक पहुँची। अब भला शाहज़ादी उस दवा को क्यों धुलवाती। हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी ?"—हम लोगों की ओर भेदभरी दृष्टि डालते हुए हीरोजी ने पूछा।

"भाई, हम दवा क्या जानें ?" कृष्णानंद ने कहा।

"तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम्हें तमीज़ न आई। अरे वह दवा थी वेसलीन—वही वेसलीन, जिसका आज घर-घर में प्रचार है।"

"वेसलीन। लेकिन वेसलीन तो दवा नहीं होती।"—मनोहर ने कहा।

"कौन कहता है कि वेसलीन दवा होती है। अरे उसने हाथ में लगा दी वेसलीन और घाव आप ही आप अच्छा हो गया। वह अँगरेज़ बन बैठा डाक्टर—और उसका नाम हो गया। शाहंशाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फ़िरंगी डाक्टर से कहा—'माँगो।' उस फ़िरंगी ने कहा—'हुज़ूर, मैं इस दवा को हिंदुस्थान में रायज करना चाहता हूँ, इस लिए हुज़ूर मुझे हिंदुस्थान में तिजारत करने की इजाज़त दे दें।' बादशाह सलामत ने जब यह सुना

कि डाक्टर हिंदुस्थान में इस दवा का प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'मंज़ूर! और कुछ माँगो।' तब उस चालाक डाक्टर ने जानते हो क्या माँगा? उसने कहा—'हुज़ूर, मैं एक तंबू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवा के पीपे इकट्ठे किए जावेंगे। जहाँपनाह यह फ़रमा दें कि उस तम्बू के नीचे जितनी ज़मीन आवेगी, वह जहाँपनाह ने फ़िरंगियों को बख़्श दी।' शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, उन्होंने सोचा, तम्बू के नीचे भला कितनी जगह आवेगी। उन्होंने कह दिया—'मंज़ूर।'

"हाँ, तो शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था। और वह अँगरेज़ था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था न! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़ का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाज़ पर तम्बू लदवाकर चल दिया हिन्दुस्तान। कलकत्ते में उसने वह तम्बू लगवा दिया। वह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अंदाज़ आप नहीं लगा सकते। उस तम्बू का रंग नीला था। तो जनाब वह तम्बू लगा कलकत्ते में, और विलायत से पीपे पर पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपों में वेसलीन की जगह भरा था एक-एक अँगरेज़ जवान, मय बन्दूक और तलवार के। सब पीपे तम्बू के नीचे रखवा दिए गए। जैसे-जैसे पीपे ज़मीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बू को बढ़ा-बढ़ाकर ज़मीन घेर दी गई। तम्बू तो रबड़ का था न, जितना

बढ़ाया, बढ़ गया। 'अब जनाब तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि पलासी का युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है! असल में तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था, और उस वक़्त मुग़ल-बादशाह का हरकारा दौड़ा था दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि पलासी की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस उक़्त दिल्ली में शाहंशाह शाहजहाँ की तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक़्त बादशाह सलामत की सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फ़िरंगियों की चालों से हैरान था। उसने मौक़ा देखा न महल, वहीं सड़क पर खड़े होकर उसने चिल्लाकार कहा—'जहाँपनाह ग़ज़ब हो गया। ये बदतमीज़ फ़िरंगी अपना तम्बू पलासी तक खींच लाए हैं, और चूँकि कलकत्ते से पलासी तक की ज़मीन तम्बू के नीचे आ गई है, इस लिए इन फ़िरंगियों ने उस ज़मीन पर क़ब्जा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीज़ों ने शाही फ़रमान दिखा दिया।' बादशाह सलामत की सवारी रुक गई थी। उन्हें बुरा लगा। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जंहाँ तक फ़िरंगियों का तम्बू घिर जाय वहाँ तक की जगह उनकी हो गई, हमारे बुज़ुर्ग यह कह गए हैं।' बेचारा हरकारा अपना-सा मुँह लेकर वापस गया।

"हरकारा लौटा, और इन फ़िरंगियों का तम्बू बढ़ा। अभी तक तो आते थे पीपों में आदमी, अब आने लगा तरह-तरह का सामान। हिन्दुस्तान का व्यापार फ़िरंगियों ने अपने हाथ में

ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और उधर लोगों की घबराहट बढ़ी। यह जो किताबों में लिखा है कि बक्सर की लड़ाई हुई, यह ग़लत है। भाई, जब तम्बू बक्सर पहुँचा तो फिर हरकारा दौड़ा।

"अब ज़रा बादशाह सलामत की बात सुनिए,। वह जनाब दीवान-ख़ास में तशरीफ़ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हज़ारों मुसाहब बैठे थे। बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे—सामने एक साहब जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ मुसाहब गला फाड़-फाड़कर 'वाह, वाह' चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा तो यह सब बंद हो गया। बादशाह सलामत ने पूछा—'म्याँ हरकारे, क्या हुआ—इतने घबराए हुए क्यों हो?' हाँफते हुए हरकारे कहा—'जहाँपनाह, इन बदज़ात फ़िरंगियों ने अंधेर मचा रक्खा है। वह अपना तम्बू बक्सर खींच लाए।' बादशाह सलामत को बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबों से पूछा—'मियाँ, यह हरकारा कहता है कि फ़िरंगी अपना तम्बू कलकत्ते से बक्सर तक खींच लाए। यह कैसे मुमकिन है?' इस पर एक मुसाहब ने कहा—'जहाँपनाह, ये फ़िरंगी जादू जानते हैं, जादू!' दूसरे ने कहा—'जहाँपनाह, इन फ़िरंगियों ने जिन्नात पाल रक्खे हैं—जिन्नात सब कुछ कर सकते हैं।' बादशाह सलामत की समझ में कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, तुम बतलाओ यह तम्बू किस तरह बढ़

आया।' हरकारे ने समझाया कि तम्बू रबड़ का है। इस पर बादशाह सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा—'ये फ़िरंगी भी बड़े चालक हैं, पूरे अक़ल के पुतले हैं।' इस पर सब मुसाहबों ने एक स्वर में कहा—'इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फ़रमाते हैं।' बादशाह सलामत मुसकराये—'अरे भाई किसी चोबदार को भेजो, जो इन फिरंगियों के सरदार को बुला लावे। मैं उसे ख़िलअत दूँगा।' सब मुसाहब कह उठे—'वल्लाह! जहाँपनाह एक ही दरयादिल हैं—इस फ़िरंगी सरदार को ज़रूर ख़िलअत देनी चाहिये।' हरकारा घबराया। वह आया था शिकायत करने, वहाँ बादशाह सलामत फ़िरंगी-सरदार को ख़िलअत देने पर आमादा थे। वह चिल्ला उठा—'जहाँपनाह! इन फ़िरंगियों ने जहाँपनाह की सल्तनत का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बू के नीचे करके उस पर क़ब्ज़ा कर लिया है। जहाँपनाह, ये फ़िरंगी जहाँपनाह की सल्तनत छीनने पर आमादा दिखाई देते हैं।' मुसाहब चिल्ला उठे—'ऐं, ऐसा ग़ज़ब।' बादशाह सलामत की मुसकराहट ग़ायब हो गई। थोड़ी देर तक सोच कर उन्होंने कहा—'मैं क्या कर सकता हूँ? हमारे बुज़ुर्ग इन फ़िरंगियों को उतनी जगह दे गए हैं, जितनी तम्बू के नीचे आ सके। भला मैं उसमें कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, फ़िरंगी सरदार को ख़िलअत न दूँगा।' इतना कह कर बादशाह सलामत फ़िरंगियों की चालाकी अपनी बेगमात से बतलाने के लिए हरम के अन्दर चले गए। हरकारा बेचारा चुपचाप लौट आया।

"जनाब, उस तम्बू ने बढ़ना जारी रक्खा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशी के ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगों में भगदड़ मच गई। उन दिनों राजा चेतसिह बनारस की देखभाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामत के पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान-ख़ास में हाज़िर किया गया। हरकारे ने बादशाह सलामत से अर्ज़ की कि वह तम्बू बनारस पहुँच गया है और तेज़ी के साथ दिल्ली की तरफ़ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारे से कहा—'तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बतलाओ, क्या किया जाय?' वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओं ने कहा 'जहाँपनाह, एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज कर इन फ़िरंगियों का तम्बू छोटा करवा दिया जाय और कलकत्ते भेज दिया जाय। हम लोग जाकर लड़ने को तैयार हैं। जहाँपनाह का हुक्म भर हो जाय। इस तम्बू की क्या हक़ीक़त है, एक मर्तबा आसमान को भी छोटा कर दें।' बादशाह सलामत ने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा—'क्या बतलाऊँ, हमारे बुज़ुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ इन फ़िरंगियों को तम्बू के नीचे जितनी जगह आ जाय, वह बख़्श गए हैं। बख़्शीशनामा की रू से हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं। एक दफ़ा जो ज़बान दे दी, वह दे दी। तम्बू का छोटा कराना तो ग़ैरमुमकिन है। हाँ कोई ऐसी हिकमत निकाली जाय, जिससे ये फ़िरंगी अपना तम्बू आगे

न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबार-आम किया जाय और यह मसला वहाँ पेश हो।'

'इधर दिल्ली में तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फ़िरंगियों का तम्बू इलाहाबाद, इटावा ढँकता हुआ आगरे पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता तो ये फ़िरंगी दिल्ली पर भी अपना तम्बू तान कर क़ब्ज़ा कर लेंगे।' बादशाह सलामत घबराए—दरबार-आम किया गया। सब अमीर-उमरा इकट्ठा हुए। जब सब लोग इकट्ठा हो गए, तो बादशाह सलामत ने कहा—'आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते हैं कि हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ ने फ़िरंगियों को इतनी ज़मीन बख़्श दी थी, जितनी उनके तम्बू के नीचे आ सके। इन्होंने अपना तम्बू कलकत्ते में लगवाया था। लेकिन वह तम्बू है रबड़ का, और धीरे-धीरे ये लोग तम्बू आगरे तक खींच लाए। हमारे बुज़ुर्गों से जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा, क्योंकि शाहंशाह शाहजहाँ अपना क़ौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं और अपने क़ौल के पक्के हैं। अब आप लोग बतलाइए, क्या किया जाय।' अमीरों और मंसबदारों ने कहा—'हमें इन फ़िरंगियों से लड़ना चाहिए और इनको सज़ा देनी चाहिए। इनका तम्बू छोटा करवा कर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए, बादशाह सलामत ने कहा—'लेकिन हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारा क़ौल टूटता

है।' इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराए हुए ही दरबार में घुस आया। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए क़िले तक आ पहुँचा।' सब लोगों ने देखा। वास्तव में हज़ारों गोरे ख़ाकी वर्दी पहने और हथियारों से लैस, बाजा बजाते हुए तम्बू को क़िले की तरफ़ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—'हमने तै कर लिया। हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारे बुज़ुर्गों ने जो कुछ कह दिया, वही होगा। उन्होंने तम्बू के नीचे की जगह फ़िरंगियों को बख़्शा दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बू के नीचे आ रही है तो आवे। मुग़लसल्तनत जाती है तो जाय, लेकिन दुनियाँ यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद हमेशा अपने क़ौल की पक्की रही है।' इतना कहकर बादशाह सलामत मय अपने अमीर-उमराओं के दिल्ली के बाहर हो गए और दिल्ली पर अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलियुग मे भी मुग़लों ने अपनी सल्तनत बख़्शा दी।"

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—"हीरोजी, एक प्याला चाय और पियो।"

हीरोजी बोल उठे "इतनी अच्छी कहानी सुनाने के बाद भी एक प्याला चाय? अरे महुवे के ठर्रे का एक अद्धा तो हो जाता।"

बाहर-भीतर

"मुझे तुम सब लोग बधाई दो। मैं कितनी सुखी हूँ, कितनी सुखी हूँ!" हँसते हुए, गाते हुए और थिरकते हुए कुमारी निर्मला देवी ने कमरे में प्रवेश किया।

वह कमरा महिला-विद्यालय के बोर्डिङ्गहाउस की मेट्रन का कमरा था। उस समय वहाँ पर चार देवियाँ बैठी हुई ताश खेल रही थीं। कमरे की मालकिन का नाम था श्रीमती सुशीला देवी, एम० ए०। गठे बदन की गोलमटोल स्त्री थीं। क़द नाटा था, और रंग गेंहुआँ। चेहरा भरा हुआ, मोटा और भद्दा, जिस पर मुँहासे के दाग़ थे। आँखें छोटी-छोटी जिन पर सोने की कमानी का चश्मा चढ़ा हुआ था। उनकी उम्र उनके कहने के हिसाब से पचीस वर्ष की थी, पर उन्हें देखनेवाला उन्हें पैंतीस वर्ष से कम की न कह सकता था।

सुशीलादेवी अपने पलँग पर बैठी हुई थीं। उनकी दाहनी ओर श्रीमती भाग्यवती देवी, बी० ए०, एक आराम-कुरसी पर झूल रही थीं। उनका रंग साफ़ था, गाल कुछ-कुछ धँस गए थे। क़द मझोला, मुख गोल और चेहरे की बनावट बहुत सुंदर। यह अपनी उम्र छब्बीस वर्ष की बतलाती थीं, पर शक्ल से चालीस वर्ष की दिखलाई देती थीं।

सुशीला देवी के सामने श्रीमती कमला देवी, एम० ए०, बैठी

थीं। यह लंबी और एकहरे बदन की थीं। रंग गोरा और आँखें बड़ी-बड़ी तथा उभरी हुई। मुख पर एक स्वाभाविक लाली थी, और इनके बाल खुले हुए थे। कलाई पर सोने की रिस्टवाच थी। यह अपनी उम्र बाईस वर्ष की बतलाती थीं, और देखनेवाला भी यही अनुमान करता था।

सुशीला देवी की बाईं ओर श्रीमती मानिनी देवी, बी० ए०, बैठी थीं। बदन एकहरा, गठा हुआ और क़द मझोला। मुख लंबा और रङ्ग पीला। आँखें बड़ी-बड़ी, नाक नुकीली और सुंदर तथा होंठ चौड़े। यह अपनी उम्र सत्ताईस वर्ष की बतलाती थीं, पर देखने वाला इन्हें इक्कीस या बाईस वर्ष की अंदाज़ता था।

चारों के हाथ में ताश के पत्ते थे। निर्मला के प्रवेश करते ही चारों ने पत्ते मेज़ पर डाल दिए।

निर्मला ने गाते हुए कहा—"मेरा विवाह—मेरा विवाह तय हो गया। किससे? वही रमेश, वही रमेश, जो आई० सी० एस० हुआ है। आज बाबूजी का ख़त आया है।"

चारों ने निर्मला की ओर देखा, वह हँस रही थी। थोड़ी देर तक चारों मौन रहीं, इसके बाद सुशीला देवी ने कहा—"बधाई देने के स्थान पर मैं तुमसे सहानुभूति प्रकट करती हूँ।" सुशीला देवी का स्वर कटु, रूखा और गंभीर था। निर्मला की हँसी ग़ायब हो गई, आँखें फ़ाड़कर आश्चर्य से उसने पूछा—"यह क्यों?"

"कारण जानना चाहोगी? तो सुनो। तुमने इतनी शिक्षा पाई है, क्यों? क्या पत्नी बनने के लिए? क्या पुरुष की दासी बनने

के लिए और बच्चा जनने के लिए ? क्या तुम अपना कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी बनाना चाहती हो, जब कि विस्तृत संसार तुम्हारे सामने पड़ा है ? तब तो तुम्हारा इतना पढ़ना-लिखना व्यर्थ गया। दासी बनने और बच्चा जनने के लिए स्त्रियों की कमी नहीं है। इस काम के लिए लाखों नहीं, करोड़ों पशु के तुल्य अशिक्षित स्त्रियाँ मिल जायँगी। पर जब तुम इसके लिए तैयार होती हो तो मुझे आश्चर्य होता है, और तुम पर दया आती है।"

सुशीला देवी के बात समाप्त करते ही भाग्यवती देवी बोल उठीं--"और मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि किस प्रकार एक स्त्री, जिसके आत्मा है, अत्याचारी पुरुष-जाति की दासी बन कर रह सकती है। पुरुष अत्याचारी है, ख़ुदग़र्ज़ है। पति और पत्नी ! कितना व्यंग्यात्मक नामकरण है। पुरुष पति है, स्वामी है, मालिक है ! और स्त्री पत्नी है, दासी है, ग़ुलाम है ! कितना अत्याचार ! और हम स्त्रियाँ इसे सहर्ष स्वीकार भी करती हैं। हमारा कितना पतन है ! हमें तो चाहिए कि हम इन पुरुषों का अपमान करें, इनको ठुकरावें। सदियों तक अविद्या के बल पर इन्होंने हमें ग़ुलाम बनाए रक्खा, अब हमारी बारी है। हमें इनसे बदला लेना चाहिए, हमें इनको बतला देना चाहिए कि हम इनके बराबर हैं। बराबर ही क्यों, हम इनसे श्रेष्ठ हैं। पुरुष पशु है, स्त्री उच्चभावना-प्रधान होने के कारण देवी है।"

कमला देवी हँस पड़ीं, ताली बजाते हुए उन्होंने कहा—"वेल सेड ! वेल सेड ! और एक बात तो तुम भूल ही गईं निर्मला !

तुम्हें यह क्या सूझा है कि तुम एक पुरुष की दासी बन कर रहो, जब कि तुम यहाँ पर दस पुरुषों को ग़ुलाम बना कर देवी की तरह उनसे अपने को पुजवा सकती हो, रानी की तरह उन पर शासन कर सकती हो ! खाओ, पियो और खेलो ! स्वयं बंधन में बँधना बड़ी भारी भूल है।"

मानिनी देवी ने अब चुप रहना उचित न समझा—"कमला बिल्कुल ठीक कहती है। मुझको ही लो। मेरा विवाह मेरे माता-पिता ने मेरे बाल्य-काल में ही कर दिया था। पर जब मुझे ज्ञान हुआ तब मैंने पति को छोड़ दिया। क्यों ? इस लिए कि दासी बन कर रहना मैं कभी पसंद नहीं कर सकती। एक पति, एक स्वामी ! कितनी विडंबना ! चाहे वह कुरूप हो, चाहे रूपवान्, वह सहृदय हो, चाहे हृदय-हीन। इसी लिए मैंने उसे छोड़ दिया है। और आज ? आज मैं देवी हूँ, आराध्य हूँ। सुंदर से सुन्दर नवयुवक, जिनके पास वैभव की कमी नहीं है, प्रतिभा की कमी नहीं है, मेरे पैरों पर लोटा करते हैं। और, मैं जिसको चाहती हूँ, ठुकरा देती हूँ। कितने गौरव का पद है ! हाः हाः हाः हाः भोली निर्मला, तुम ग़लती कर रही हो !"

निर्मला के धैर्य का बाँध टूट गया, वह रोने लगी। हिचकियाँ लेते हुए उसने कहा—"तुम सब की सब हृदय-हीन और ढोंगी हो, मुझसे जलती हो।" इतना कहकर वह तेज़ी से कमरे के बाहर चली गई।

थोड़ी देर तक चारों मौन बैठी रहीं, चारों कुछ सोच रही थीं।

घड़ी ने उस समय पाँच बजाए। सुशीलादेवी ने उठते हुए कहा—
"चलो, घूमने चलती हो?"

कमला देवी ने किंचित गंभीर होकर कहा—"नहीं, आज न जा सकूँगी। मेरे सिर में कुछ दर्द है।" इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गईं। कमरे के किवाड़ बंद करके उन्होंने अलमारी से एक फ़ोटो निकाला, और उसे हृदय से लगाकर वह सिसक-सिसक कर रोने लगीं। वह एक नवयुवक का फ़ोटो था, जिसके नीचे बड़े सुंदर अक्षरों में लिखा था—'सुबोध, नवंबर'३१। उस समय वह कह रही थीं—"सुबोध! सुबोध! तुम मुझे छोड़कर क्यों चले गए? मैंने तुम्हारा अपराध किया, जानती हूँ। पर क्या वह इतना बड़ा अपराध था, जिसके लिए तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकते थे? नहीं-नहीं, मैंने ही तुम्हें त्यागा, मेरे क्षणिक आवेश ने हमारे पवित्र बंधन के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, हाय, अब सब समाप्त हो गया! मुझसे प्रेम करनेवाला कौन है? कोई नहीं, कोई नहीं!"

सुशीला देवी ने मानिनी देवी से कहा—"तुम चलती हो?"

मानिनी देवी ने रूखे स्वर में कहा—"नहीं, मुझे आज कुछ पत्र लिखने हैं।" इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गईं, और तकिए से मुँह ढाँक कर लेट रहीं। वह सोच रही थीं—"क्या मेरे लिए अब यह संभव नहीं कि मैं लौट जाऊँ? उफ़! नहीं-नहीं, बहुत आगे बढ़ आई हूँ। और, अब तो वह शायद मुझे स्वीकार भी न करेंगे। हे मेरे भगवान, मुझे बुद्धि दो, मुझे शांति दो, और मुझे क्षमा करो!"

भाग्यवती देवी की ओर अपनी निष्प्रभ और पथराई आँखों से देखते हुए सुशीला देवी ने कहा—"और क्या तुम्हें भी कुछ काम है?"

उठते हुए भाग्यवती देवी ने कहा—"नहीं, मुझे तो...मुझे तो कोई काम नहीं है, चलती हूँ। लेकिन निर्मला के साथ हम लोग व्यर्थ ही कटु हो गईं। आख़िर विवाह इतना बुरा तो नहीं है, जितना उसे हम लोगों ने कह डाला। हम लोग ज़रा अपने हृदय को ही टटोलें!"

भाग्यवती देवी का हाथ अपने हाथ में लेते हुए सुशीला देवी ने कहा—"शायद तुम ठीक कहती हो। पर जो हो गया, वह हो गया छोड़ो इस बात को। अब विवाह पर विचार करना ही बेकार है। हम लोग वह उम्र, बहुत दिन हुए, पार कर चुकी हैं।"

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सास जी ने माला लिया और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौक़ा मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारंद। अगर बात यह यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आए तब कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया बालाई ग़ायब।

रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई, और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कठघरा आया, उसमें दूध, बालाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ, और पति देव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह तरह के मेवे दूध में औटे गए, सोने का वर्क़ चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रक्खा गया जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर बिल्ली कमरे में आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सास जी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फ़र्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी, रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ मे आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एक दम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सर झुकाए हुए अपराधिनी की भांति बातें सुन रही है।

महरी बोली "अरे राम बिल्ली तो मर गई, मा जी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोलीं, "मा जी बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सास जी बोलीं, "हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला!"

महरी ने कहा, "फिर क्या हो, कहो तो पण्डित जी को बुलाय लाई।"

सास की जान में जान आई, "अरे हाँ जल्दी दौड़ के पण्डित जी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की ख़बर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई—पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह ख़बर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। ख़बर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे से मोटे से आदमी थे। लम्बाई चार फ़ीट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच।

चेहरा गोल मटोल, मूछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी ख़ुराक वाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुख जी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत बैठी—सास जी, मिसरानी, किसनू की मा, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियां बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मा ने कहा, "पण्डित जी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?"

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा, "बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।" मिसरानी जी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाई, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, "हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है! रामू की माँ यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

रामू की मा की आँखों में आँसू आ गए, "तो फिर पण्डित जी, अब क्या होगा आप ही बतलाएँ।"

पण्डित परमसुख मुसकराए, "रामू की मा चिन्ता की कौन सो बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रयश्चित्त का विधान है सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जायगा।"

रामू की मा ने कहा, "पण्डित जो उसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय।"

"किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दो जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद एक्कीस दिन का पाठ हो जाय।"

छन्नू की दादी, "हाँ और क्या, पंडित जी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की मा ने कहा, "तो पण्डित जी कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय?"

पण्डित परमसुख मुसकराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय? अरे रामू मा शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मा बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस

एक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हाँ कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी अपनी श्रद्धा !"

रामू की मा ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा "अरे बाप रे इक्कीस तोला सोना ! पण्डित जी यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से न काम निकलेगा ?"

पण्डित परमसुख हँस पड़े, "रामू की मा ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रुपया का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !"

मोल तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा, "उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं, रामू की मा मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जायगा।"

"अरे बाप रे ! इतना सामान, पंडित जी इसमें तो सौ-डेढ़-

सौ रुपया खर्च हो जायगा" रामू की मा ने रुआसी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्लो की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मा! ख़र्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित्त है कोई हँसी खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा! प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा, "पण्डित जो ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा ख़र्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा, "और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं—दान-पुन्न में किफ़ायत ठोक नहीं।"

मिसरानो ने कहा, "और फिर मा जी आप लोग बड़े आदमो ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।"

रामू की मा ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डित जी के साथ। पण्डित परमसुख मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा, "रामू की मा! एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरो तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा सा खर्चा है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठंढी साँस लेते हुए रामू की मा ने कहा, "अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले, "रामू की मा! यह तो खुशी की बात है—अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला।" इतना कहकर पण्डित जी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डित जी—रामू की मा को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुख है—बिगड़ो न—" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मा ने एक स्वर में कहा।

रामू की मा ने पण्डित जी के पैर पकड़े—और पण्डित जी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपए और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा, "सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा।"

"यह तो पण्डित जी ठीक कहते हैं, पण्डित जी की तोंद तो देखो—" मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डित जी पर व्यंग किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—

दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रक्खो—और देखो पूजा के लिए—"

पण्डित जी की बात ख़तम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की मा ने घबड़ा कर कहा, "अरी क्या हुआ री।"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा, "मा जी बिल्ली तो उठकर भाग गई!"

उत्तरदायित्व

मैंने एक काम किया—अच्छा या बुरा, इससे कोई प्रयोजन नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि मैंने वह काम क्यों किया। अपने उस कर्म का उत्तरदायी स्वयं मैं हूँ, सब लोग यह कहेंगे, और साधारण तर्क से उनका यह कहना ग़लत भी नहीं है। पर ऐसी भी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जब कि एक काम करने के लिए मैं प्रेरित या विवश किया जाता हूँ। ऐसी अवस्था में मेरे उस काम का उत्तरदायित्व किस पर है—मुझ पर या मुझे प्रेरित अथवा विवश करने वाले पर? यहाँ पर मतों में विभिन्नता मिलेगी—कुछ कहेंगे कि उत्तरदायित्व मुझ पर है और कुछ कहेंगे कि उत्तरदायित्व प्रेरित या विवश करनेवाले पर है। एक और भी मत है और यद्यपि उस मत के माननेवालों को संख्या धीरे-धीरे कम होती जाती है, पर वह मत ऐसा नहीं है कि हँसी में उड़ाया जा सके। उस मत के हिसाब से मेरे किसी भी काम का उत्तरदायित्व न मुझ पर है और न किसी दूसरे व्यक्ति पर। मेरे प्रत्येक साधारण अथवा असाधारण कर्म का उत्तरदायित्व उस पर है जिस पर कर्म करने वाले को रचने का उत्तरदायित्व है। इस मतवाले को अँग्रेज़ी में 'फ़ैटलिस्ट' कहते हैं और हिन्दी में भाग्यवादी कहते हैं। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि यदि मैं भाग्यवादी बन सकूँ तो जगदीश की आत्म-हत्या से मेरे हृदय में जो द्वन्द मचा हुआ है वह शान्त हो जाय।

जगदीश ने आत्म-हत्या की—लोगों ने यह ख़बर अख़बारों में पढ़ी और भूल गए। जगदीश अनाथ था, इस लिए उसकी मृत्यु पर कोई रोया भी नहीं। उसके मित्रों में से कुछ ने कहा, "बेचारा कितना अच्छा था—उसके मरने से बड़ा दुःख हुआ" और कुछ ने कहा, "कितना बेवकूफ़ था, दुनिया बेवकूफ़ों के लिए नहीं है"। यहाँ तक कि जिसके लिए जगदीश ने आत्म-हत्या की थी उसने जब यह ख़बर सुनी तो कुछ उदास होकर कहा, "कितना पागल था, भगवान उसे शान्ति दे।" और दुनियाँ उसी रफ़्तार से चलती रही जिस रफ़्तार से चल रही थी।

जगदीश मेरा सहपाठी था और मेरे बोर्डिंग में रहता था। हम लोग केवल इतना जानते थे कि उसका नाम जगदीश है और वह अनाथ तथा निर्धन है। गोरा-सा और लम्बा-सा नवयुवक—एकहरे बदन का और सुन्दर! आँखों में चमक थी और मुख पर एक विचित्र प्रकार की तन्मयता। क्लास में काफ़ी तेज़ था और ट्यूशन करके अपना निर्वाह करता था। वह एक लक्ष्यहीन नवयुवक था, भावुक और हठी।

वह दिन जगदीश के लिए बड़ा अशुभ था जिस दिन जगदीश की मिस शीला से मित्रता हुई। मिस शीला एक सम्पन्न बैरिस्टर की पुत्री थीं और हमारे क्लास में पढ़ती थीं। उस दिन जगदीश कितना प्रसन्न था, उसने मुझसे कहा, "रञ्जन! वह अनिन्द्य सुन्दरी है और—और वह मेरे सपने की रानी है—समझे!" मिस शीला से उसकी मित्रता की बात सुन कर और उसके प्रति जगदीश

के उद्गार जान कर मुझे अच्छा नहीं लगा, शायद इसलिए कि जगदीश को मैं बहुत चाहता था और मैं उससे अधिक अनुभवी था। मैंने कहा था, "जगदीश! जानते हो, तुम कहाँ जा रहे हो?" उसने मेरी ओर कुछ देर तक ध्यान से देख कर कहा, "हाँ रंजन, तुम्हारा मतलब विनाश से है न? हाँ, उसी ओर जा रहा हूँ—प्रेम विनाश का ही दूसरा रूप है।" और वह मुसकरा पड़ा था।

जगदीश की और मिस शीला की मित्रता बढ़ती गई—वह प्रेम में परिणत हो गई। जगदीश मिस शीला पर दीवाना-सा हो गया। महीनों एक समय भोजन न करके वह कुछ रुपये बचाता था और एक दिन मिस शीला के साथ सिनेमा जाकर तथा उसके बाद होटल में उसके साथ बैठ कर खाना खाने में फूँक देता था। अपनी आवश्यकताओं को अधिक से अधिक घटा कर तथा अधिक से अधिक ट्यूशनों पर अधिक से अधिक मेहनत करके वह कुछ रुपए जमा करता था और एक दिन वह अपनी सामर्थ्य से बाहर एक क़ीमती उपहार ख़रीदकर मिस शीला को भेंट कर देता था।

जिस बात का मुझे भय था वह अन्त में हो ही गई। उस दिन संध्या के समय जगदीश जब लौटा तब उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, आँखें पथराई हुई थीं और मुख पर मुर्दनी छाई हुई थी। मैंने उससे कारण पूछा। एक रूखी मुसकराहट के साथ उसने कहा, "सब समाप्त हो गया।"

"यह कैसे?" मैंने पूछा।

"यह इस तरह, कि शीला ने मेरा विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया।"

मैंने कहा, "तुम शीला के लिए नही बने हो, और शीला तुम्हारे लिए नहीं बनी है—तुम्हारा सारा भ्रम दूर हो गया और तुम अब अपने को सम्हाल सकते हो—सब ठीक ही हुआ!"

जगदीश कुछ देर तक मेरी ओर देखता रहा, इसके बाद तूफान फट पड़ा, "ठीक ही हुआ—जो कुछ होता है वह ठीक ही होता है। रञ्जन! शीला मेरे वास्ते नहीं है—मैं शीला के वास्ते नहीं हूँ, और रञ्जन जानते हो मेरी दुनियाँ कितनी सँकरी है, कितनी सीमित है। मेरी दुनियाँ शीला है—समझे! इसके ये अर्थ होते हैं कि दुनिया मेरे वास्ते नही है और मैं दुनियाँ के वास्ते नहीं हूँ!"

मैंने जगदीश की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, "जाओ, सोओ जाकर—पागलपन की बातें मत करो! धीरे-धीरे दुख दूर हो जायगा और तुम स्वयं अपने को समझने लगोगे।"

जगदीश ने कुछ नहीं कहा, वह सीधे अपने कमरे में गया और सुबह मालूम हुआ कि रात में जगदीश ने आत्म-हत्या कर ली।

सुख आते हैं और चले जाते हैं दुख आते हैं और चले जाते है। बच्चे पैदा होते है और बुड्ढे मरते हैं। मित्रता बनती है और टूटती है। यह सब एक विचित्र क्रम है। पर बहुत कुछ मनुष्य की प्रकृति पर भी निर्भर है। भावना यदि जन्म लेती है तो मरती भी है, पर भावना का जीवन मनुष्य की प्रकृति से सम्बद्ध है। कुछ

प्रकृतियाँ ऐसी हैं जहाँ किसी भी भावना का जीवन क्षणिक रहता है, और कुछ प्रकृतियाँ ऐसी हैं जहाँ भावना का जीवन काफ़ी अधिक होता है—कभी-कभी मनुष्य के जीवन से भी अधिक। दो महीने के अन्दर ही बहुत लोग जगदीश को भूल गए, पर मैं उसे न भूल सका न भूल सका।

एक दिन सुना कि मिस शीला का विवाह होने वाला है। मिस शीला से मेरा परिचय था, और जगदीश की आत्म-हत्या के पहले मेरी उससे अच्छी ख़ासी घनिष्टता थी। जगदीश की मृत्यु के बाद मैंने मिस शीला से बात-चीत नहीं की, न जाने क्यों उसके प्रति मुझ में एक भयानक घृणा की भावना पैदा हो गई थी।

यह ख़बर सुन कर कि मिस शीला का विवाह होने वाला है, मैं अपने को न रोक सका। रविवार था, सुबह चाय पीकर मैं उसके बँगले पर पहुँचा। इत्तला करवाई और ड्राइंग-रूम में शीला मुझसे मिली। मुसकराते हुए उसने कहा, "कहिए मिस्टर रञ्जन, कैसे भूल पड़े? आज बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए।"

मुसकराने का प्रयत्न करते हुए मैंने भी कहा, "यों ही घूमता-घामता चला आया। सोचा कि आपके विवाह के शुभ-समाचार पर आपको बधाई दे आऊँ।"

मैंने जो कुछ कहा उसमें कटुता की एक अव्यक्त भावना अवश्य थी, पर जहाँ तक मैं समझता हूँ मैंने वह भावना तनिक भी स्पष्ट न की थी। न जाने किस प्रकार शीला को उस कटुता का पता लग गया, उसने कहा, "आप ने बड़ी कृपा की मिस्टर रञ्जन!"

आप मुझे बधाई देने आवेंगे, इसकी मुझे तनिक भी आशा न थी, और मैं आपके बधाई देने पर आप को धन्यवाद न दे कर आप के यहाँ आने पर आप को धन्यवाद अवश्य दूँगी।"

अच्छा ही हुआ जो शीला ने बात छेड़ी—यदि वह इस प्रकार उत्तर न देती तो जीवन का एक बहुत बड़ा रहस्य मेरी आँखों से ओझल रह जाता। मैंने कुछ उत्तेजित होकर कहा, "शायद विवाह आप के लिए एक आवश्यक विवशता है और इसी लिए आपको उससे प्रसन्नता नहीं है।"

यह कह कर मैं कुछ पछताया भी, पर तीर कमान को छोड़ चुका था। शीला ने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए कहा "मिस्टर रञ्जन! आप मेरा अपमान करने आए हैं, मैं यह जानती हूँ। आप मेरा अपमान करने क्यों आए हैं, इसे मैं जानती हूँ। यदि मैं चाहूँ तो इस अपमान का बदला मैं आप से जाने को कह कर ले सकती हूँ। पर ऐसा न करूँगी। जगदीश की मृत्यु के बाद बहुत लोग मुझसे घृणा करने लग गए हैं। आप जगदीश के सब से घनिष्ट मित्र थे, शायद आप सब से अधिक घृणा भी करते हैं। ऐसी हालत में आप से मैं बातें करूँगी—अपनी सफ़ाई दूँगी। समझे। आप प्रश्न करें और मैं प्रत्येक प्रश्न का सही-सही उत्तर दूँगी।

मैं सम्हल कर बैठ गया, मैंने कहा, "मिस शीला मैं आपके सद्व्यवहार के लिए आप को धन्यवाद देता हूँ। मेरा पहला प्रश्न यह है—आपने जगदीश से विवाह करने से इन्कार क्यों कर दिया?

" इस लिए कि मैं उससे प्रेम नहीं करती थी ! " शान्त भाव से उसने कहा।

" आप उससे प्रेम नहीं करती थीं—यह तो बड़ी विचित्र बात है ! "

" हाँ मैं उससे प्रेम नहीं करती थी मिस्टर रञ्जन—मैं कहती हूँ कि मैं उससे प्रेम नहीं करती थी—क्या इतना काफी नहीं है ? पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं आप से सब बातें सच-सच कहूँगी, फिर आप मुझे झूठी समझ कर मेरा अपमान करेंगे।"

निष्प्रभ होकर मैंने कहा, " पर जगदीश तो समझता था कि आप उससे प्रेम करती हैं ! "

"जगदीश समझता था कि मैं उससे प्रेम करती हूँ—मिस्टर रंजन उसमें दोष किसका था, जगदीश का या मेरा ? यदि मैं किसी व्यक्ति से अच्छी तरह बातें करती हूँ, यदि किसी व्यक्ति को मैं नापसन्द नहीं करती हूँ और उसका साथ मुझे अच्छा भी लगता है तो इसके ये अर्थ नहीं कि मैं उससे प्रेम करती हूँ। मैं यदि किसी व्यक्ति को देख कर मुसकरा देती हूँ और वह व्यक्ति इतना मूर्ख है कि मेरी इस मुसकराहट से वह इस निर्णय पर पहुँच जाता है कि मैं उससे प्रेम करती हूँ तो उसमें मेरा क्या दोष है ? मिस्टर रंजन, मैं यह मानती हूँ कि जगदीश को मैं पसन्द करती थी, यह ठीक है, कि मैं उससे हँसती-बोलती थी—पर इसके ये अर्थ नहीं कि मैं उससे प्रेम करती थी। जगदीश ही क्यों, न जाने कितने लोग मेरे यहाँ आते हैं—न जाने कितने युवक मेरी मुसकान के प्यासे मेरे

दरवाजे खड़े रहते हैं और मैं प्रत्येक व्यक्ति से बातें करती हूँ, उनको अपनी मुसकानें बाँटती हूँ। पर प्रेम तो मैं एक ही से कर सकती हूँ, सबों से नहीं। हाँ, आप यह पूछेंगे कि तुम ऐसा क्यों करती हो। इसका भी उत्तर मेरे पास है, यह इस लिए कि मुझे अच्छा लगता है। अपने चारों ओर प्रणय-भिखारियों की भीड़ देख कर मुझे बुरा क्यों लगे? मुझे अपनी सुन्दरता पर, अपनी मोहिनी शक्ति पर गर्व होता है। मिस्टर रंजन—आपही बतलाइये कि यदि आपको घेर कर दस बीस सुन्दरी युवतियाँ खड़ी हो जायँ तो क्या आपको अच्छा न लगे?"

"आप ठीक कहती हैं!" धीरे से मैंने कहा।

"अब सवाल आता है कि मुझे अच्छा क्यों लगता है? यह तो मानव-प्रकृति है, या यदि आप इसे मानव-दुर्बलता कहें तो इसमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। फिर आप यह पूछेंगे कि मैं उन लोगों पर यह क्यों नहीं स्पष्ट कर देती हूँ कि मैं उनसे प्रेम नहीं करती। मुझे केवल इसमें सुख मिलता है। कि वे मेरी पूजा करें, मेरे इशारों पर नाचें, कि मैं उन्हें अपना खिलौना बना कर खेलूँ। इसका भी उत्तर स्पष्ट है, मिस्टर रंजन! हम सब खेलना चाहते हैं, जीवन स्वयं ही एक खेल है। दुखी वही है जो अच्छी तरह से खेल नहीं सकता। मैं अपने खिलौनों पर यह सत्य प्रकट करके अपने खेल को बिगाड़ूँ क्यों?"

मेरी आँखें खुल गईं, शीला ने जो कुछ कहा वह कटु था, भयानक था, पर सत्य था, फिर भी मैंने साहस किया, "पर आप के

उस खेल का दूसरे पर क्या परिणाम होगा इसको भी कभी आपने सोचा है ? आपकी एक अर्थ-हीन मुसकान अथवा क्षणिक-भावना से प्रेरित चुम्बन दूसरे का कितना अहित कर सकेंगे, इस पर भी कभी ध्यान दिया है ? मैं मानता हूँ कि खेलना सब पसन्द करते हैं पर मनुष्य के भविष्य से खेलना उसके प्राणों से खेलना ! मिस शीला, यह कितना भयानक है— कितना अमानुषिक है !"

शीला हँस पड़ी, पर उसकी हँसी में माधुर्य न था, एक पैशाचिक कर्कशता थी। "मनुष्य के भविष्य से खेलना, मनुष्य के प्राणों से खेलना ! इस पर आपको आश्चर्य होता है, पर मैं आप से पूछती हूँ, कौन उनसे नहीं खेलता ? क्या पुरुष स्त्री के प्राणों से नहीं खेलता, क्या वह स्त्री को गुलाम बना कर नहीं रखना चाहता ? मिस्टर रंजन, अपने समाज में आप वेश्याओं का स्थान तो जानते ही होंगे ! ये वेश्याएँ हैं कौन ? ये वेश्याएँ भी कभी सच्चरित्र युवतियाँ थीं जो सुख चाहती थीं, मान चाहती थीं और प्रतिष्ठा चाहती थीं। पर इनमें से प्रत्येक के साथ किसी न किसी पुरुष ने सब से पहले खेला है, और उस पहले खेल से संतुष्ट न होकर पुरुष जाति ने उनके जीवन भर के लिए उन्हें खिलौना बना लिया है। और भी आप सुनेंगे यह जो नवयुवकों की भीड़ मेरे दरवाज़े हाज़िरी बजाती है, इनमें से अधिकांश मुझे खिलौना बना कर खेलना चाहते हैं।"

मैं सिहर उठा। चुपचाप मैं मिस शीला की बातें सुन रहा था,

मैंने धीरे से कहा, "पर जगदीश तो आपसे खेलने नहीं आया था। दूसरे के अपराध का दण्ड उसे आपने क्यों दिया ?"

शीला शान्त हो गई थी, "हाँ, जगदीश मुझ से खेलने नहीं आया था, यह मैं जानती हूँ।"

मैंने फिर कहा, "और जगदीश वास्तव में आप से प्रेम करता था।"

"यह भी जानती हूँ।" शीला बोल उठी, "पर मैं क्या करूँ ? जगदीश मूर्ख था—इसका मुझे दुःख है। मैंने अन्त में उससे कह भी दिया था कि मैं उससे प्रेम नहीं करती, पर वह मेरी बात समझ ही न सका। मैं उस व्यक्ति को जो समझने के लिए तनिक भी तैयार न था किस प्रकार समझा सकती थी ? और मिस्टर रंजन, मैं आप से सच कहती हूँ कि मैंने जगदीश के साथ खेला भी नहीं। वह मेरे साथ सिनेमा देखने जाता था, एक-आध बार किसी प्रेम दृश्य को देख कर मुझ में एक प्रकार की क्षणिक भावना जाग उठी, और मैंने उसे चुम्बन कर लेने दिया। पर मिस्टर रंजन, मैं देवी तो नहीं हूँ, मानवी हूँ, हाड़-माँस की बनी हूँ। मुझ में भी वासना है। उस अवसर पर अपने को रोकना बड़ा कठिन होता है, उस आत्म-समर्पण को कभी महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। फिर जगदीश इतना अच्छा था, इतना भोला था, इतना नासमझ था कि मैं उसका हृदय भी नहीं दुखाना चाहती थी।

शीला की बातें सुनकर उसके प्रति मेरे हृदय में सहानुभूति की भावना जागृत हो रही थी कि एकाएक जगदीश का चित्र

मेरी आँखों के आगे आ गया—वह चित्र जिसे मैंने उसके जीवन की अन्तिम घड़ियों में देखा था, वही लड़खड़ाते हुए पैर, पथराई आँखें और मृत्यु की छाया से धुँधला मुख। मालूम होता था कि जगदीश मुझ से कहने आया है, 'बस इतने ही से पिघल गए, उस दिन की मेरी हालत क्या तुम भूल गए, इस स्त्री ने मेरी हत्या की है, यह याद रक्खो'—और मेरी सारी कोमलता जाती रही। मैंने रूखे स्वर में कहा, "आप उसका हृदय दुखाना नहीं चाहती थीं, पर आप उसकी हत्या करना चाहती थीं। मिस शीला! पता नहीं आप मुझे धोखा दे रही हैं या आप स्वयं अपने को धोखा दे रही हैं?"

शीला की कर्कशता लौट आई, पर इस समय उद्विग्नता के साथ नहीं—दबी हुई, गम्भीर। मैं उसकी हत्या करना चाहती थी, मिस्टर रंजन! आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। आप समझते हैं कि जगदीश को आत्म-हत्या का उत्तरदायित्व मुझ पर है। मैं आप से इतना कह चुकी हूँ। फिर भी आप निष्पक्ष भाव से निर्णय नहीं कर रहे हैं। मैं जानती हूँ, आप से कहीं अधिक, कि पुरुष अधिक बलवान है, वह अधिक शक्तिशाली है। मैं यह भी जानती हूँ कि प्रकृति से पुरुष स्वामी है और स्त्री गुलाम है। पर जब पुरुष गुलामी करने पर तुल जाय तो उसमें स्त्री का क्या दोष? यदि कोई पुरुष मेरे इशारे पर नाचे तो उसमें कमज़ोरी उसकी है न कि मेरी, यदि पुरुष स्वयं अपना मूल्य न जाने तो मुझे क्या पड़ी है कि मैं उसे उसका मूल्य बतलाऊँ?"

शीला ने मेरी आँखों में अपनी आँखें गड़ा दीं। वह निश्चल और अविचलित थी। उसके मुख पर आत्म-विश्वास झलक रहा था, उसकी आँखों में चमक आ गई थी। उस समय उसका सुन्दर मुख और भी सुन्दर हो उठा था। "और मिस्टर रंजन, यह भी याद रखियेगा कि मनुष्य स्वयं अपने कर्मों का उत्तरदायी है। भगवान ने उसे भले-बुरे की पहचान करने की क्षमता प्रदान की है, वह अपना हित-अहित समझ सकता है। यदि आप जगदीश के कर्मों का उत्तरदायित्व मुझ पर रख रहे हैं तो आप मेरे साथ तो अन्याय कर ही रहे हैं, आप जगदीश के साथ भी अन्याय कर रहे हैं।"

मैं जानता था कि मैं पराजित हुआ। शीला ने अपने पक्ष में अकाट्य तर्क दिए थे, पर एकाएक मुझे एक भूली बात याद हो गई। मैंने कहा, "मिस शीला आप जानती हैं कि जगदीश बहुत ग़रीब था, आप जानती हैं कि ट्यूशन पढ़ा-पढ़ा कर वह निर्वाह करता था। लोगों का कहना है कि उसकी निर्धनता के कारण ही आपने उसके विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। ऐसी हालत में क्या आप बतला सकेंगी कि आपने उसके क़ीमती उपहार क्यों स्वीकार किए? रक्त से कमाए हुए उसके कुछ चाँदी के टुकड़ों को आपने सिनेमा देख कर और होटल में खाना खाकर बेरहमी के साथ क्यों खर्च किया?"

मिस शीला का मुख एक क्षण के लिए पीला पड़ा फिर लाल हो गया। वह उठ खड़ी हुई। उसने भर्राए हुए स्वर में कहा,

"मिस्टर रंजन! मैं समझती हूँ कि काफ़ी अपमानित होने पर भी मैंने आपकी सब बातों का उत्तर दिया। पर आप बहुत अधिक असभ्य होते जा रहे हैं। मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं आप के निरर्थक प्रश्नों का उत्तर दिए ही जाऊँ।" और वह तीर की भाँति कमरे के बाहर निकल गई।

परिचय-हीन यात्री

वैसे तो मैं रेल के तीसरे दर्जे में सफ़र करने पर विश्वास करता हूँ, और वह भी इस लिए कि रेल के अधिकारियों के ध्यान में यह बात अभी तक नहीं आई कि इस ग़रीब-परवर हिन्दुस्तान में रेल के चौथे दर्जे की भी आवश्यकता है। पर उस दिन इंटर क्लास में बैठा था। मेरे साथ मेरे एक मित्र भी थे, और यहाँ यह बतला देना उचित ही होगा कि अपने टिकट के साथ उन्होंने मेरा टिकट भी ख़रीद लिया था।

कानपुर से लखनऊ अधिक दूर नहीं है। फ़ासला पैंतालीस मील और रास्ता तय करने का समय एक्सप्रेस से नब्बे मिनट। पर पैंतालीस मील के सफ़र में भी मनुष्य बहुत कुछ देख सकता है और नब्बे मिनट में बहुत कुछ सीख सकता है। इंटर क्लास और थर्ड क्लास में कोई विशेष अंतर नहीं रहता। पूरी गाड़ी में इंटर क्लास का एक ही डब्बा होने के कारण वह इतना भरा रहता है, जितना थर्ड क्लास। रहा इंटर क्लास का गद्दा, उसका होना या न होना बराबर ही है। यदि ध्यान से देखा जाय, तो इंटर क्लास को हम लोग वह थर्ड क्लास कह सकेंगे, जहाँ कुछ अधिक दाम देकर मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के बीच में बैठे हुए हम सफ़र कर सकते हैं, और जहाँ न हमें चरस और गाँजे

का धुँआ ही परेशान करेगा, और न कपड़ों से निकलने वाली भयानक दुर्गंध।

ज़नाना डब्बा अलग होते हुए भी उस डब्बे में स्त्रियाँ थीं, और प्रायः लोगों को स्त्रियों के उनके साथ बैठने पर आपत्ति के स्थान पर प्रसन्नता ही होती है। पर ऐसी अवस्था में स्त्री कुरूप न हो, और जहाँ तक हो सके, जवान हो। जितने व्यक्ति वहाँ बैठे थे, सबकी नज़रें स्त्रियों पर गड़ी थीं। एक साहब ने एक किशोरी को घूरने के लिए धूप का चश्मा चढ़ा लिया, दूसरे महोदय ने अख़बार की आड़ का सहारा लिया। थोड़ी देर बाद वहाँ बैठे हुए जितने व्यक्ति थे, सबों की आँखें मेरे बर्थ के कोने पर गड़ गईं। मैंने अभी तक उस कोने को न देखा था। वहाँ पर एक स्त्री बैठी थी। वह हरे रेशम की साड़ी पहने थी, जिस पर ज़री का काम था। उसके हाथ सुन्दर, भरे हुए और गोरे-गोरे थे, जिनमें काँच की दो-दो चूड़ियाँ थीं। साड़ी के ऊपर रेशम की चादर थी, जिसने उसके पैरों को ढँक रक्खा था। एक विचित्र बात यह थी कि उस स्त्री के मुख पर लम्बा घूँघट था। उस स्त्री के बग़ल में कुछ थोड़ी-सी जगह ख़ाली थी, जिस पर एक अटेची केस था।

उस दिन कुछ कॉलेज के लड़के भी जा रहे थे, और कॉलेज के लड़के अनुभव-हीन होते हैं। अख़बार की ओट से घूरने वाले वकील साहब और धूप का चश्मा लगा कर घूरने वाले डॉक्टर साहब जीवन में काफ़ी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। पर कॉलेज के

लड़के सीधे-सादे ढंग से अपनी तीव्र दृष्टि से घूँघट को चीर कर उसके अन्दर छिपे हुए सौंदर्य को देखने का प्रयत्न करने लगे।

गाड़ी ने सीटी दी, और एक और सज्जन ने कंपार्टमेंट में प्रवेश किया। वह उस स्त्री के बग़ल में खाली जगह पर बैठ गए। इसके बाद उन्होंने कंपार्टमेंट में बैठे हुए लोगों पर एक सरसरी नज़र दौड़ाई।

यह सज्जन जवान थे, और खूबसूरत थे। गोरे, तंदुरुस्त और क़द्दावर आदमी, दाढ़ी-मूँछ साफ़, रेशमी शेरवानी और ग़रारेदार पाजामा, पैर में मोज़ा नदारद, लेकिन पेटेंट का ग्रीशियन पंप।

गाड़ी चल दी थी। कुछ लोगों ने इन सज्जन को उस स्त्री के पास बैठा देख कर अपनी आँखें उधर से हटा ली थीं, पर अधिकांश रहस्य-भेदन करने का लगातार प्रयत्न कर रहे थे। जिन्होंने आँखें हटा ली थीं, वे भी तिरछी दृष्टि से इस आशा पर उस स्त्री को रह-रहकर देख लेते थे कि देखें, शायद घूँघट हट जाय, और देवीजी के दर्शन हो जायँ।

आनेवाले सज्जन कुछ देर तक मौन भाव से कुछ सोचते रहे, इसके बाद वह मुस्कराए। वह खड़े हो गए, और उन्होंने कहा—"असहाब! पहले मैं आप लोगों से, आप लोगों को जो तकलीफ़ हुई है, उसके लिए क्षमा माँग लूँ। आप लोग इन देवीजी को बहुत देर से देखने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर देख नहीं पाते, और मैं जानता हूँ कि इस नाकामयाबी पर आप लोगों को

तकलीफ़ भी होती होगी। मैं यहाँ यह बतला दूँ कि यह देवीजी मेरी धर्मपत्नी हैं, और साथ ही यह भी बतला दूँ कि मैं परदा-प्रथा का विरोधी हूँ। मेरे ख़याल से सौंदर्य को परदे में रखना एक घोर अपराध है—अमानुषिक है। सौंदर्य मनुष्य को सुखी बनाता है, इसी लिए तो हम सब सौंदर्य के पीछे दीवाने रहते हैं। जिस सौंदर्य से हमें सुख मिलता है, उस सौंदर्य से दूसरे को वंचित रखना यदि पाप नहीं है, तो क्या है ? हम एक सुन्दरी स्त्री को देखते हैं, हृदय प्रसन्न हो जाता है, आत्मा पुलकायमान हो उठती है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सौंदर्य का छिपाना मनुष्यता के प्रति एक घोर अपराध है, दंडनीय है !"

कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा—"पर यहाँ यह भी बतला देना अनुचित न होगा कि कुरूपता का प्रदर्शित करना उतना ही बड़ा अपराध है, जितना सौंदर्य को छिपाना। हम एक कुरूप व्यक्ति को देखते हैं, और एक घृणा की विद्युत् हमारे सारे शरीर में प्रवाहित हो जाती है। तभी तो हम कुरूपता को छिपाते हैं। हमारे घरों का सुन्दर भाग सामने बनाया जाता है, कुरूप भाग पीछे की ओर, जहाँ किसी की दृष्टि न पहुँचे। आप सब लोग इसे मानते ही होंगे।

"मैं कुरूपता को छिपाए था, पर आप उस कुरूपता को देखने के लिए इतनी देर से उत्सुक हैं। मुझे दुःख है कि मैं कुछ क्षणों के लिए मनुष्यता के प्रति एक बहुत बड़ा अपराध करने जा रहा हूँ। पर मुझे संतोष इस बात का है कि मेरा यह अपराध

आप लोगों के अनुचित और व्यर्थ के कौतूहल के दंड-रूप में होगा।"

इतना कहकर उन सज्जन ने उस स्त्री के मुख का घूँघट जबरदस्ती हटा दिया। उस स्त्री को देखते ही लोगों ने उधर से अपनी आँखें हटा ली; पर मैं अपनी आँखें न हटा सका। वैसा कुरूप मुख मैंने शायद कभी नहीं देखा। ऐसा मालूम होता था मानो माँस को थोप कर वह मुख बना दिया गया था। आँखें छोटी-छोटी, नाक नहीं के बराबर—गाल, ठोड़ी, मत्था, सब एक साँचे में ढले हुए। मुख बहुत चौड़ा और दो दाँत बाहर की ओर निकले हुए। और, वह स्त्री निश्चल भाव से नीचे दृष्टि गड़ाए बैठी थी।

वह सज्जन बैठ गए।

उन्नाव आया, और पार हो गया। मैं उन सज्जन के विचित्र व्यवहार पर आश्चर्य कर रहा था। मुझसे न रहा गया। मैंने उन सज्जन से कहा—"आप बड़े विचित्र प्रकार के मनुष्य हैं, क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ?"

उन्होंने थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा। इससे बाद वह मुसकराए—"आप ठीक कहते हैं, क्योंकि मैं विचित्र प्रकार का मनुष्य हूँ। और आप को यह बात भी विचित्र ही लगेगी कि मेरा कोई परिचय नहीं। पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, आप मेरी पत्नी के विषय में ही प्रश्न करना चाहते हैं। आपमें कौतूहल है, और कौतूहल को पूरा करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।"

मैं आश्चर्य में था। सोचने का मौक़ा ही न था, मैंने पूछा—"आप काफ़ी अधिक सुसंस्कृत तथा शिक्षित मालूम होते हैं, फिर आपने इस स्त्री से विवाह क्यों किया ?"

"इस लिए कि मेरे विवाह में मेरे पिता का हाथ था।"

"क्या आप अपनी पत्नी से प्रेम करते हैं ?"

"हाँ ?"

"इतनी कुरूप होने पर भी ?"

"हाँ, इतनी कुरूप होने पर भी। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? मेरी स्त्री मेरे लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग करने को तैयार है, मेरी प्रत्येक बात का वह ध्यान रखती है, मुझे तनिक भी कष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति मेरे लिए इतना कर सकता है, मैं उससे न प्रेम करूँगा, तो किससे करूँगा ? अभाव की पूर्ति का नाम ही प्रेम है—मेरा जीवन भरा हुआ है, मुझमें अभाव नहीं है। एक ऐसा व्यक्ति मुझे मिल गया, जिसमें मेरे हर्ष और रुदन प्रतिबिंबित होकर मेरी आत्मा को कर्तव्य-पथ पर रत करते हैं।"

"क्या आपकी पत्नी को आपका यह व्यवहार अच्छा लगा होगा ?"

"अच्छा तो न लगा होगा, पर बुरा भी न लगा होगा। मुझमें और मेरी पत्नी में कोई अन्तर ही नहीं। जो बात मुझे अच्छी लगती है, वह मेरी पत्नी को अच्छी लगती है और जो बात मुझे बुरी लगती है, वह मेरी पत्नी को बुरी लगती है। क्या आप समझते हैं कि अपनी पत्नी का मुख दिखलाने में मुझे

प्रसन्नता हुई ? उसकी कुरूपता तो विधि का विधान है, वह उसकी कुरूपता नहीं है, वह हम दोनों की कुरूपता है, हमारे जीवन की कुरूपता है। जीवन में कुरूपता का कहीं भी न होना तो असंभव है। प्रश्न यह है कि वह कुरूपता ऐसे स्थान पर तो नहीं है, जहाँ उसे हमारी आत्मा को दूषित करने का अवसर मिलता हो। मैं और मेरी पत्नी--हम दोनों जानते हैं कि हमारे जीवन में विषमता नहीं है, संघर्ष नहीं है। रहीं ऐसी छोटी-छोटी बातें, उनकी न तो मैं परवा करता हूँ, और न मेरी पत्नी ही परवा करती है।"

हम दोनों में फिर कोई बात नहीं हुई।

लखनऊ स्टेशन आ रहा था, एकाएक मैंने उनसे पूछा— "एक प्रश्न और है। अगर वह अनुचित हो, तो आप मुझे क्षमा करेंगे। क्या आप बतला सकते हैं कि आप अपने को परिचय-हीन व्यक्ति क्यों कहते हैं ?"

शांत भाव से उन सज्जन ने उत्तर दिया—"परिचय हीन हूँ, इसी लिए अपने को परिचय-हीन कहता हूँ। इस दुनिया में कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जो अपना परिचय दे सकता हो ? हम सब परिचय-हीन हैं, एक क्षण आए, और दूसरे क्षण चले। हम स्वयं अपने को नहीं जानते, फिर दूसरों को हम अपना परिचय किस प्रकार दें ? और, फिर परिचय की आवश्यकता ही क्या है, हम सब चलती-फिरती और बोलती तसवीरें हैं जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं..."

गाड़ी रुक गई, और बात अधूरी ही रह गई। उन सज्जन से फिर कभी मिलना न हुआ। मैं आज तक यह बात नहीं समझ पाया हूँ कि वह सज्जन पागल थे, दार्शनिक थे, या बने हुए थे।

बॉय ! एक पेग और

विश्वकांत उन मनुष्यों में था—पता नहीं, ऐसे मनुष्य और भी हैं या नहीं, क्योंकि मैंने अभी तक दूसरा नहीं देखा—जिनको देखकर डर लगता है पर जिनकी ओर मनुष्य बिना अपनी इच्छा के ही स्वयं आकर्षित होता जाता है। उससे मेरा प्रथम परिचय एक असाधारण परिस्थिति में हुआ था। सिनेमा में मैं अपनी एक महिला मित्र के साथ बैठा हुआ था। सरोजिनी सुन्दरी थी, सुशिक्षित थी और सुसंस्कृत थी। विश्वकांत मेरी बग़ल में आकर बैठ गया। 'शो' आरंभ होने में कुछ देर थी, विश्वकांत ने मुझसे पूछा—"क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ?" मैंने अपना परिचय दे दिया। कुछ चुप रहकर उसने मुझसे फिर पूछा—"और, क्या मैं आपके बग़ल में बैठी हुई देवीजी का परिचय भी पा सकता हूँ?" एक अपरिचित व्यक्ति से यह अशिष्ट प्रश्न सुन कर मुझे क्रोध आया। "आपको हम लोगों के परिचय पाने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं दिखलाई देती, और रहे आप, सो ऐसे अशिष्ट आदमी का परिचय न पाना ही मैं अच्छा समझता हूँ।" विश्वकांत हँस पड़ा—"जनाब, यह देवीजी आपकी पत्नी तो नहीं हैं, इतना मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। अब यह क्या हैं, इसकी कल्पना भी मैं बड़े मज़े में कर सकता हूँ। आपसे मुझे यही कहना है कि आप उतने ही बेवक़ूफ़

हैं, जितनी सारी दुनियाँ है। मैंने आपको एक समझदार आदमी समझने की भूल की थी, और इसके लिए मुझे दुःख है।" विश्वकांत की बात खत्म होते ही मैंने उसे मारने को हाथ उठाया। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, और कहा—"देखिए, सिनेमा में मार-पीट करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसमें मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन आप शायद एक सभ्य व्यक्ति हैं, आपकी ही बदनामी होगी। मेरा कार्ड लीजिए, और आप जब समय देंगे, मैं आपसे मिल सकूँगा।"

सरोजिनी यह बातचीत सुन रही थी। उसने विश्वकांत से कहा—"बातचीत से तो आप पढ़े-लिखे आदमी मालूम होते हैं, लेकिन आप इतने असभ्य क्यों हैं, यह मैं नहीं समझ सकती।"

विश्वकांत हँस पड़ा—"मैं असभ्य इस लिए हूँ कि यह सारी सभ्यता ढकोसला है, ढोंग है, और धोकेबाज़ी है। आप शायद इस बात को नहीं समझ सकतीं, क्योंकि आप इस सभ्यता में उतनी मिलजुल गई हैं कि आप इससे अलग होकर इसका वास्तविक रूप नहीं देख सकतीं। अच्छा, अब मैं यहाँ अधिक न बैठूँगा, बेकार बात ही बढ़ेगी। कार्ड आपके पास है ही।" इतना कह कर वह वहाँ से चला गया।

दूसरे दिन संध्या के समय मैं विश्वकांत के यहाँ गया। सिविल लाइंस में उसने एक बँगला किराए पर ले रक्खा था। मैंने विश्वकांत को ख़बर करवाई, उसने मुझे ड्राइंग-रूम में बुलवा लिया। उसके सामने एक मेज़ थी, जिस पर चार

बोतलें सोडे की और एक ह्वाइटहार्स ह्विस्की की रक्खी हुई थी। एक शीशे का गिलास भी भरा हुआ रक्खा था। उसने उठकर मुझसे हाथ मिलाया, फिर कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा—"आपको पीने में कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

"धन्यवाद ! में शराब नहीं पीता।" रूखे स्वर में मैंने कहा।

विश्वकांत हँस पड़ा—"आप नहीं पोते ! आपकी इस सुबुद्धि पर मैं आपको बधाई देता हूँ। आख़िर शराब कोई अच्छी चीज़ तो है नहीं।" यह कहकर उसने मेज़ पर रक्खा हुआ गिलास ख़ाली कर दिया। गिलास मेज़ पर रखते हुए उसने कहा—"मैंने यह आशा न की थी कि आप आएँगे, क्योंकि मैंने आपको कायर समझा था। लेकिन आप आ ही गए, अच्छा हुआ। मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि न आप शराबी हैं और न कायर। आपमें आत्मसम्मान भी यथेष्ट मात्रा में है, और आप वादे के पक्के हैं। साथ ही मुझे आप पर थोड़ा-सा दुःख है। आप इस दुनियाँ में रहने क़ाबिल नहीं हैं। यह दुनियाँ भले आदमियों के लिए नहीं है, यह धोकेबाज़ों और कमीनों के रहने की जगह है।"

मैं आश्चर्य से उस व्यक्ति के मुख की ओर देख रहा या। वह इकहरे बदन का लंबा-सा आदमी था। दाढ़ी-मूँछ साफ़, बाल बीच से खिंचे हुए कुछ भूरे और कुछ सूखे। मुख लंबा था, और गाल धँसे हुए थे। आँखें बड़ी-बड़ी, जिनमें एक विचित्र प्रकार की चमक थी।

कुछ रुक कर उसने फिर कहा—"आप अपने अपमान का बदला लेने आए हैं। पता नहीं, आपके पास पिस्तौल है या नहीं। यदि नहीं, तो मैं आपको एक दे सकता हूँ, क्योंकि मेरे पास दो हैं। मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि आप इस दुनियाँ में रहने क़ाबिल नहीं हैं। अपने लिए मुझे इतना ही कहना है कि मुझे इस दुनियाँ में रहने की अब कोई आवश्यकता नहीं। मैं दुनियाँ से आजिज़ हूँ, और दुनियाँ मुझसे। समझे जनाब, फ़्रांस में एक ज़माना था, जब डुएल हुआ करते थे। मैंने कल ही तो पढ़ा है। मुझे भी कल से डुएल लड़ने का शौक़ हो गया है। इन पिस्तौलों से हम लोग अपना झगड़ा निपटा सकते हैं।"

मैं घबराया, अपने जीवन में मैंने कभी पिस्तौल न चलाई थी। फिर विश्वकांत उस समय तक शराब की आधी बोतल ख़त्म कर चुका था, और उसकी आँखें लाल थीं। मैं वास्तव में डर गया। मैंने कहा—"न तो मेरे पास पिस्तौल है, और न मैं चला ही सकता हूँ।"

"फिर क्या हो?" विश्वकांत कुछ देर तक मौन रहा—"अच्छा, तो आप जिस प्रकार चाहें, अपने अपमान का बदला लें, मैं तैयार हूँ।" यह कह कर वह उठा, और मेरे सामने तन कर खड़ा हो गया।

"मैं बदला नहीं लूँगा!" मैंने कहा।

"आप बदला नहीं लेंगे? डर गए। आपकी शकल बतला रही है कि आप डर गए। अच्छा, अब मैं आपसे उस दिन के

दुर्व्यवहार के लिए माफ़ी माँगता हूँ। आप यहाँ तक आए हैं, तो चाय पीने के लिए मैं आपको मजबूर भी करूँगा।"

× × ×

विश्वकांत को मैं नहीं समझ सका। मेरे लिए वह व्यक्ति एक पहेली था। वह हँसमुख था, वह उदार था। पर उसकी हँसी में एक भयानक उपेक्षायुत व्यंग था। उसकी उदारता में आत्महत्या की सीमा तक पहुँचनेवाला पागलपन था। वह लोगों से बहुत कम मिला करता था, दिन-भर घर में बंद वह कुछ पढ़ा करता था। क्या पढ़ता था, और जो कुछ वह पढ़ता था, उसे वह समझता भी था, यह वह स्वयं ही न जानता था। उसके मिलनेवाले उसे भीत तथा सशंकित होकर देखते थे।

न जाने क्यों मैं विश्वकांत का घनिष्ठ मित्र हो गया। उसमें ऐसी कौन-सी बात थी जो मुझे अपनी ओर आकर्षित करती थी, यह मैं आज तक न जान सका। फिर भी उसमें कुछ बात अवश्य थी।

उस दिन संध्या के समय मैं उसके साथ सिनेमा गया। फ़िल्म अच्छा था, विश्वकांत उसे बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। इंटर-वेल हुआ, और हाल में प्रकाश हो गया। बॉय को बुलाने के लिए उसने पीछे देखा, और एकाएक वह चौंक उठा, मानो किसी बिच्छू ने डंक मार दिया हो। वह कह उठा—"अरे!" और उठ खड़ा हुआ।

कुछ देर तक वह पीछे देखता रहा। मैंने देखा, वह एक स्त्री को बड़े ग़ौर से देख रहा है। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया— "चलो, बाहर चलें।"

"बाहर क्या करोगे चलकर? 'शो' शुरू होने में अब बहुत कम समय है।"

"नहीं, चलो। मैं 'शो' नहीं देखूँगा।" विश्वकांत की आवाज़ काँप रही थी, "चलो।"

"ऐसी क्या बात है? क्या कुछ तबियत ख़राब है? बैठो, ठीक हो जायगी।"

विश्वकांत ने तीखे स्वर में कहा—"चलो। चलो। यहाँ मेरा दम घुट रहा है। उस स्त्री को देख रहे हो—उस स्त्री को देख रहे...... । उफ़! चलो जी।" इतना कह कर उसने बल-पूर्वक मुझे उठा दिया।

हम दोनों बाहर गए! विश्वकांत काँप रहा था, उसके सारे शरीर से पसीना निकल रहा था। उसने कहा—"किशन! मुझे प्यास लगी है। बार-रूम में चलो।"

हम दोनों बार-रूम में गए। उसने ज़ोर से कहा—"बॉय! एक पेग व्हिस्की और सोडा।" यह कहकर वह एक कुर्सी पर बैठ गया! मैं उसके सामने बैठा था, बीच में मेज़ थी।

बॉय ने मेज़ पर एक गिलास रख दिया। विश्वकांत ने एक घूँट में ही उसे ख़ाली करते हुए कहा—"एक पेग और!" इतना कह उसने एक ठंडी साँस ली। उसने मेरी ओर देखा, "किशन!

तुम्हें आश्चर्य हुआ ! और आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। तुम सोचते होगे, एक मनुष्य, जो संसार पर सदा हँसा करता है, किस प्रकार काँप उठा ? तुम सोचते होगे, एक हृदय-हीन व्यक्ति किस प्रकार उद्विग्न हो सकता है ?" विश्वकांत की आँखें उस समय पथराई हुई-सी थीं। उसके मुख को एक असह्य वेदना ने विकृत कर दिया था, "हाँ, मैंने तुम्हें कभी अपने दिल का घाव नहीं दिखलाया, मैं स्वयं ही उसे भूल गया था। तुम ताज्जुब करोगे कि कि किस प्रकार एक मनुष्य अपने दिल के घाव को भूल सकता है, ठीक ही है । पर मैंने उस घाव को भुलाने के लिए दिल को ही भुला दिया था। दुनिया मुझे दीवाना समझती है, बदमाश समझती है। और मैं दीवाना और बदमाश दोनों ही हूँ। पर दुनिया यह नहीं जानती कि मुझे ऐसा होने को उसने ही तो मजबूर किया। एक-एक क़दम मैं नीचे गिरा, और हर क़दम के साथ मैंने अपनी आत्मा की हत्या की, उसका गला घोटा, और उसका ख़ून पिया । लोग समझते हैं, मैं हँसता हूँ, पर सच कहता हूँ, मैं अपने रुदन को ही अपना रक्त पिला-पिलाकर हँसाया करता हूँ।" विश्वकांत ने ज़ोर से एक हाथ से मेरा पकड़ लिया, और दूसरे हाथ से मेज़ पर रक्खे हुए गिलास को ख़ाली करके आवाज़ दी—"बॉय ! एक पेग और !"

उसने मेरा हाथ ढीला कर दिया। इसके बाद उसने एक गहरी साँस ली । "एक समय था, जब मेरे हृदय में भी उमंग

थी। जवानी का जोश था, चहल-पहल से भरी हुई दुनियाँ सामने थी। वसंत का समीरण मेरे शरीर में कंपन उत्पन्न कर देता था, कलिका का सौरभ मुझे उन्मत्त बना देता था। मुझमें कल्पना थी। और कल्पना के साथ जो कुछ हुआ करता है, वह सब था। कल की ही बात है—नहीं, बहुत दिन हुए, सोचूँ तो! किशन, बहुत दिन हुए, शायद युगों की बात है। तब मैं जवान था। एम० ए० में पढ़ता था। सोच रहा था, आई० सी० एस० हूँगा, विवाह करूँगा, और—और न-जाने क्या-क्या सोचा था। मैं धनी था, पानी की तरह रुपया बहाता था। बँगले में अकेला रहता था। पास में कार थी। एक दिन—उफ़्! कितना भयानक था वह दिन—उसी दिन माधवी ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। अनिंद्य सुंदरी थी किशन। उसकी आँखों में मादकता थी, अधरों पर सुधा थी। वह बी० ए० में पढ़ती थी। उसके पिता एक साधारण स्थिति के मनुष्य थे। उन्होंने मेरे बँगले के निकट ही एक काटेज किराए पर ले रक्खी थी। मैं अपने को भूल गया। मैंने प्रेम किया। किसी ने इस प्रकार प्रेम नहीं किया, जिस प्रकार मैंने किया। और माधवी ने...पता नहीं, उसने मुझसे प्रेम किया या मेरे बँगले और या मेरी कार से। पर इतना जानता हूँ कि उसने भी प्रेम किया। मैंने उससे विवाह का प्रस्ताव किया—पिता ने उसे काफ़ी स्वतंत्रता दे दी थी। और, यह तय हो गया कि मेरे एम० ए० पास होने पर विवाह होगा। मैं कितना सुखी था—कितना सुखी था!" विश्वकांत चुप हो गया। उसने मेरी ओर

आँखें गड़ाकर कुछ देर तक देखा, फिर मेज़ पर रक्खे हुए गिलास को ख़ाली करके उसने आवाज़ दी—" बॉय, एक पेग और !"

विश्वकांत ने सिर पर हाथ रखते हुए कहा—"हाँ, क्या कह रहा था। भूल गया—हाँ, याद आ गया। किशन, मेरे पिता को तुमने नहीं देखा। वह भयानक मनुष्य थे। मैं उनका एक मात्र पुत्र था। मुझे वह बहुत प्यार करते थे। पर उनका वह प्यार कितना कठोर था। प्यार ही क्यों, मेरे पिता स्वयं ही बहुत कठोर थे। मेरी माता उनके सामने जाते हुए थर-थर काँपती थीं, और मुझे उनके सामने डर लगता था। मैं क्यों डरता था, यह मैं नहीं समझा सकता, पर मैं डरता था। लेकिन यह न समझ लेना कि मेरे पिता सब के साथ कठोर थे। वह मिलनसार थे, हँस-मुख थे। किंतु जिसके साथ वह हँसते थे, मीठी-मीठी बातें करते थे, उसका उन्होंने कभी हित नहीं किया, उसे नष्ट ही कर दिया। जिसे वह प्यार करते थे, उसी के साथ वह कठोर थे। और, साथ ही पिता जी ने मुझे भी काफ़ी स्वतंत्रता दे दी थी। मेरे विरुद्ध शिकायतों पर वह हँस कर कह देते थे—'वह जो कुछ करता है, ठीक करता है। उसमें मेरा ख़ून है, वह ग़लत कर ही नहीं सकता। करने दो !' उन्हीं पिता जी से विवाह की आज्ञा लेना आवश्यक था। वह दिन भी आ गया। पिताजी नगर में आए, और डरते-डरते मैंने अपने प्रेम की बात कही। मैंने माधवी से उनका परिचय कराया। माधवी से मिल कर न जाने

क्यों पिताजी का रूखापन दूर हो गया, उनकी कटुता ग़ायब हो गई। मैं जानता था, पिताजी की वह हँसी, उनका वह व्यवहार यही तो भयानक हुआ करता था। माधवी के जाने के बाद पिता जी ने गंभीरता-पूर्वक कहा—'विश्व ! इस लकड़ी से तुम विवाह न कर सकोगे। समझे ! इस लकड़ी में शैतान है।' मैं अवाक् रह गया। फिर भी मैंने साहस किया—'मैं उससे प्रेम करता हूँ।' पिताजी ने एक व्यंगात्मक मुसकराहट के साथ कहा—'लेकिन वह तुमसे प्रेम नहीं करती—तुम उसके लिए खिलौने की तरह हो। तुम बेवक़ूफ़ हो।' मुझे भी क्रोध आ गया। आवेश में मैं कह गया—'मैं उससे विवाह करूँगा, और आप मुझे न रोक सकेंगे। कृपा करके मेरे सामने उसका अपमान न करिए।' किशन, तुम समझ सकते हो कि मैं माधवी से कितना प्रेम करता था। जिस पिता से मैं इतना डरता था, उसी पिता के मुख पर मैंने उसका तिरस्कार किया। और पिताजी—यदि वह क्रोधित हो जाते, यदि उनके मुख पर एक शिकन तक आ जाती, तो अच्छा होता। पर यह न हो सका। वह हँस पड़े। 'तुम उससे प्रेम करते हो। इतना अधिक कि तुम मेरी अवहेलना तक कर सकते हो ! जाओ, मेरी इजाज़त है कि तुम उससे विवाह कर लो। पर इतना याद रखना, तुम्हारा विवाह न हो सकेगा, न हो सकेगा।' उफ़् ! किशन, पिताजी का वह शाप ! उनकी वह हँसी।" विश्वकांत की आँखें लाल हो गई थीं। मेज़ पर रक्खे हुए गिलास को पीकर उसने आवाज़ दी—"बॉय, एक पेग और !"

अपने मत्थे के पसीने की बूँदों को रेशमी रुमाल से पोंछते हुए विश्वकांत ने फिर आरंभ किया—"किशन ! मेरा एक सहपाठी था, उसका नाम था निर्मलचंद्र। वह एक बिगड़े हुए रईस का लड़का था। मेरे बँगले की बग़ल में उसने एक बँगला ले रक्खा था। उसके पास भी एक कार थी। उसके पिता की सारी जायदाद मेरे पिता के पास रेहन थी। बिगड़े हुए रईसों को तुम नहीं जानते किशन ! वे लोग यह जानते हुए भी कि वे मिट रहे हैं, अपने को नहीं बचा सकते। निर्मल वैसे ही रईस का लड़का था। पर उसकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान केवल मुझको ही था। हम दोनों अच्छे मित्र थे। माधवी से भी उसका अच्छा परिचय था। वह भी माधवी से प्रेम करता था। किशन, हमारे विवाह की तिथि निकट आ गई। पिताजी ने कह दिया था कि कोई संबंधी इस विवाह में न बुलाए जायँ। कुछ चुने हुए मित्रों को मैंने आमंत्रित कर दिया था। उस दिन सोमवार था। अगले बृहस्पति को मेरा विवाह होनेवाला था। दोपहर को मुझे एक तार मिला। उसमें लिखा हुआ था—'व्यवसाय में घाटा आ जाने के कारण सारी संपत्ति नीलाम पर चढ़ गई है। मैं अस्वस्थ हूँ, निराश हूँ। विवाह में मैं न आ सकूँगा, बधाई भेज रहा हूँ।' उस तार को मैंने पढ़ा, पर मेरे ऊपर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। असर होता कैसे ? मेरे ऊपर तो प्रेम का पागलपन सवार था। संसार की सारी संपत्ति माधवी के आगे तुच्छ थी। माधवी मुझे मिल रही थी, संपत्ति की मुझे क्या चिंता थी। उस दिन रात के समय मैं माधवी के यहाँ गया। मैंने उससे

कहा—'पिताजी न आ सकेंगे।' यह कहकर मैंने उसके हाथ में तार रख दिया। तार पढ़ते ही माधवी चौंक उठी, उसका मुख पीला पड़ गया—'विश्व! तुम्हारे साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है।' 'सहानुभूति कैसी ?' मैंने पूछा। उसने कहा—'यही कि तुम्हारी सारी संपत्ति निकल गई।' मैं हँस पड़ा—'इससे क्या ? तुम तो मुझे मिल रही हो। संपत्ति का मूल्य तो तुम्हारे मूल्य से बढ़कर नहीं है।' 'शायद!' माधवी ने कहा—'अब क्या करोगे ?' 'क्या करूँगा ?' मैंने पूछा। 'यही कि तुम्हारे पिता बीमार हैं, उनके पास जाना तुम्हारा धर्म है।' 'हाँ, ठीक कहा। विवाह के बाद हम दोनों चलेंगे।' 'तुम बड़े स्वार्थी हो विश्व! तुम्हारे पिता बीमार और निराश हैं, और तुम अपने सुख की सोच रहे हो। तुम अपने पिता के यहाँ जाओ, विवाह की तिथि बढ़ाई जा सकती है।' मैंने कहा—'माधवी! तुम देवी हो!' उफ़! कितनी भूल की थी, कितनी भूल की थी!" विश्वकांत का हाथ मेज़ पर रक्खे हुए गिलास पर जा पड़ा—"बॉय, एक पेग और!"

विश्वकांत कुछ देर तक कुछ सोचता रहा—"किशन, सोच रहा हूँ, फिर क्या हुआ! माधवी ने मुझे पिताजी के यहाँ भेजा, और मैंने उसे देवी कहा! वास्तव में मैं बेवक़ूफ़ था, पिताजी के यहाँ गया, वह घर पर न थे। घर का काम-काज ठीक तरह से चल रहा था। माताजी से केवल इतना मालूम हो सका कि वह राम-चंद्र—निर्मलचंद्र के पिता—के यहाँ गए हैं। मैं दूसरे दिन रामचंद्र के गाँव को गया। पिताजी वहाँ थे। मुझसे वह बड़े प्रेम से मिले

थे। मैंने उनको तार दिखलाया। वह कह उठे—'तार ग़लत लिख गया है। असल बात यह है कि रामचंद्र का कार-बार बिगड़ गया है। उनकी संपत्ति नीलाम पर चढ़ गई है। उनका कहना है कि उनकी सारी जायदाद मैं मोल ले लूँ, इस लिए मैं यहाँ आया हूँ। वह बीमार हैं, और काग़ज़ों की जाँच-पड़ताल करना भी तो ज़रूरी है।' किशन, मेरे ऊपर से एक भार उतर गया। दूसरे दिन मैं वहाँ से अपने गाँव आया। गाँव से नगर लौटा। बृहस्पति था। उसी दिन मेरा विवाह होनेवाला था। मुझे प्रसन्नता थी पर साथ ही क्रोध था। अकारण ही तिथि टल गई। फिर भी मैं सुखी था। मैं कितना प्रसन्न था—कितना प्रसन्न था! मैं नहीं जानता था कि निराशा के मुख में लौट रहा हूँ—मैं नहीं जानता था कि मेरा सर्वनाश होने जा रहा है! उफ़्!" विश्वकांत का हाथ मेज़ पर पहुँचा—फिर उसकी आवाज़—"बॉय, एक पेग और!"

इस बार मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। "विश्वकांत! बहुत पी रहे हो। तुम बेहोश हो जाओगे!"

"बेहोश हो जाऊँगा!" विश्वकांत हँस पड़ा। "इसी लिए तो पी रहा हूँ। पर इतना यक़ीन दिलाता हूँ कि जब तक पूरी कहानी न सुना लूँगा, तब तक बेहोश न होऊँगा; उसके बाद बेहोश हो जाना ही ठीक होगा। हाँ, मैं लौटा, और माधवी के पास यह संवाद सुनाने को गया। उस समय रात हो गई थी। मैंने वहाँ जो कुछ देखा, वह मुझे पागल बनाने को काफ़ी था। एक कमरे में माधवी और निर्मल दोनों बैठे हुए बड़े प्रेम से बातें कर रहे थे।

मुझे देखते ही माधवी चौंककर उठ खड़ी हुई। मेरे पास आकर उसने धीरे से कहा—'चलो, ज़रा बाहर चलें। कुछ ख़ास बात कहनी है।' बाहर आकर उसने कहा—'विश्व! क्षमा करना। मेरे पिता ने निर्मल के साथ मेरा विवाह कर दिया। मैं क्या करूँ। पर विवाह से क्या होता है? हम दोनों बराबर प्रेम करते रहेंगे!' मैंने अपने को गिरते-गिरते रोका। मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मैं बेहोश क्यों नहीं हो गया—शायद इस लिए कि मैं पुरुष हूँ। मैंने अपने को रोका, केवल इतना ही कहा—'मुझे अपने विषय में कुछ नहीं कहना है। हाँ, एक कंगाल के साथ विवाह करने पर मैं तुम्हें बधाई दे रहा हूँ। चलो, तुम्हारे बेवक़ूफ़ पति को भी बधाई दे दूँ।' माधवी के लाख रोकने पर भी मैं न रुका, और सीधे कमरे में चला गया। निर्मल मेरा उग्र रूप देख कर डर गया, उठते हुए उसने कहा—'विश्व, तुम्हारे कार-बार के बिगड़ जाने पर मुझे दुःख है।' किशन, उस समय प्रथम बार मेरे मुख पर वह पैशाचिक हँसी आई थी, जो अब मेरी चिर-संगिनी बन गई है। मैं ज़ोर से हँस पड़ा—'निर्मल! दुःख मुझे तुम पर है। तुम्हारी सब जायदाद बिक गई, और मेरे पिता ने उसे ख़रीद लिया। तुम कंगाल हो गए—हा! हा! हा! कितनी मज़ेदार बात है। और, साथ ही तुमने रुपए की दासी एक वेश्या से विवाह करके और भी अपने को नष्ट कर लिया है। मैं जाता हूँ, रोते हुए नहीं, हँसते हुए, तुम पर, इस वेश्या पर और अपने पर!' यह कह कर मैं तेज़ी के साथ वहाँ से चला आया।" विश्वकांत की शक्ति क्षीण होने लगी थी,

उसका आवेश मिटने लगा था। मेज़ पर रक्खे हुए गिलास को पीकर उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में आवाज़ दी—"बॉ—य—एक—पेग—और !"

"हाँ ! उस दिन मैं वहाँ से चला गया। मैंने माधवी को भूलने की कोशिश की, पर भूल न सका। मेरा जीवन अंधकारमय हो गया। निराशा-निराशा-निराशा ! इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, सब जगह घूमा, पर कहीं भी शांति न मिली। किशन, मैंने तो प्रेम किया था। उसी प्रेम का फल भोग रहा था। पाँच वर्ष तक घूमने पर भी मुझे शांति न मिल सकी। एक बार माधवी को फिर देखना चाहता था, लौटा। आकर सुना, भूखों रह कर, चिथड़े पहन कर और उसके बाद ज़हर खाकर माधवी मर गई ! बस, उस दिन सब समाप्त हो गया। उस दिन मैं भी समाप्त हो गया। उस दिन के बाद—मुझमें एक नए आदमी ने जन्म लिया, जो शराब पीता है, वेश्यागमन करता है, और एक-एक क़दम नीचे गिरता है। मैं माधवी को भूल गया हूँ। स्वयं अपने को मिटाकर मैंने उसकी स्मृति को मिटाने की कोशिश की है। लेकिन आज—आज वह स्त्री ज़ो पीछे बैठी थी। उसका मुख बिलकुल माधवी के मुख-सा था। उसकी आँखों में वही चमक थी, जो मैंने माधवी की आँखों के सिवा और कहीं नहीं देखी। आह ! किशन, उसने मेरा घाव फिर हरा कर दिया। किशन, मेरी बग़ल में आओ—मैं बेहोश हो रहा हूँ—जब तक बेहोश न होऊँगा, उस अभिशापित मूर्ति को न भूल सकूँगा। मुझे मेरे यहाँ पहुँचा देना। बॉय-एक-पेग-और !"

‘ इन्स्टालमेण्ट ’

चायका प्याला मैंने होठों से लगाया ही था कि मुझे मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। बरामदे में निकल कर मैंने देखा कि चौधरी विश्वम्भरसहाय अपनी नई शेवरोले सिक्स पर बैठे हुए बड़ी निर्दयता से एलेक्ट्रिक हार्न बजा रहे हैं। मुझे देखते ही वह "हलो, गुड ईवनिंग, सुरेश !" कह कर कार से उतर पड़े।

"गुड ईवनिंग, चौधरी साहब ! अभी चाय पीने बैठा ही था। बड़े मौक़े से आए।"

चौधरी विश्वम्भरसहाय गठे बदन के लम्बे-से युवक थे। उम्र क़रीब पच्चीस वर्ष की थी। रङ्ग साँवला, चेहरा लम्बा और मुख की बनावट बहुत सुन्दर। बाल बीच से खिंचे हुए, क़लम कान के नीचे तक और दाढ़ी-मूँछ साफ़। चेहरे पर पाउडर और क्रीम की एक हलकी-सी अस्पष्ट तह। वह धारीदार सिल्क की शेरवानी पहने थे और उनकी टोपी, जिसे वह हाथ में लिए थे, उसी कपड़े की थी। ग़रारेदार पाजामा, पैर से मोज़ा नदारद, लेकिन पेटेण्ट लेदर का ग्रीशियन पम्प।

चौधरी विश्वम्भरसहाय के पिता चौधरी हरसहाय अवध के एक छोटे-मोटे ताल्लुक़दार थे। विश्वम्भरसहाय अपने पिता की एकमात्र सन्तान थे, लेकिन लड़ कर प्रयाग चले आए थे। पिता और पुत्र के स्वभाव में काफ़ी समता होते हुए भी हलकी-हलकी

बातों में आपस में गहरा मतभेद रहता था। चौधरी हरसहाय और चौधरी विश्वम्भरसहाय शराब में बराबर रुपया ख़र्च करते थे, लेकिन जहाँ पिता महुवे के ठर्रे की सवा बोतल पी जाते थे, वहां पुत्र ह्विस्की के दो पेगों से ही सन्तुष्ट हो जाया करते थे। न पिता वेश्यागामी थे, न पुत्र। केवल, पिता रियासत की कुछ जवान बारिनों और चमारिनों पर दस-पन्द्रह रुपया महीना ख़र्च कर दिया करते थे, तो पुत्र नगर में 'सोसाइटी गर्ल्स' की दावत पर तथा उनको खेल-तमाशे दिखलाने में दस पन्द्रह रुपया महीना ख़र्च कर दिया करते थे। पिता और पुत्र दोनों को ही राजनीति से रुचि थी, लेकिन जहाँ पिता अमन-सभा के सभापति थे वहाँ पुत्र कभी-कभी खद्दर पहनकर कांग्रेस-मञ्च से व्याख्यान दे दिया करते थे।

परिणाम स्पष्ट था। एक दिन पुत्र ने पिता को बाग़ में भूसा भरनेवाली कोठरी में बन्द कर दिया और गाँव में फिर वापस न आने की क़सम खाकर शहर की राह पकड़ी। बारह घण्टे तक गुम रहने के कारण काफ़ी छान-बीन करने के बाद चौधरी हरसहाय उस भूसेवाली कोठरी से बरामद किए गए।

अपने पुत्र की नालायक़ी पर चौधरी हरसहाय बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने अपना पिस्तौल निकाला। पति का यह उग्र रूप देखकर चौधराइन साहिबा, अर्थात् चौधरी हरसहाय की पत्नी या चौधरी विश्वम्भरसहाय की माता ने स्वरों के साथ रोना आरम्भ किया। शायद पत्नी का अकेले रोना चौधरी साहब को

बुरा लगा, इस लिए उन्होंने भी अपनी पत्नी के स्वर में अपना स्वर मिलाया। उसके बाद दोनों गले मिले।

प्रयाग आकर चौधरी विश्वम्भरसहाय ने सिविल लाइन्स में एक काटेज किराए पर लो। घर से चलते समय वह काफ़ी रुपए साथ ले आए थे, फिर उनकी माता भी किसी न किसी प्रकार घर का ख़र्च काट-कूटकर दो-तीन सौ रुपया पुत्र को भेज दिया करती थीं।

"यार सुरेश, तीन सौ रुपया आज शाम तक चाहिए। आज दिन भर शहर की गली-गली छान डाली, लेकिन कहीं इन्तज़ाम न हो सका। आख़िर में हार कर तुम्हारा दरवाज़ा देखना पड़ा।"

मैं मुसकराया। "बस इतनी-सी बात है! अभी लो!"—चाय का प्याला चौधरी साहब के सामने बढ़ाते हुए मैंने कहा। कुछ रुक कर मैंने फिर पूछा—"आख़िर ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी?"

"यार, यह न पूछो!"

"क्या, कहीं से कुछ फ़रमाइश तो नहीं हुई है?"—मैंने भेदभरी दृष्टि डालते हुए पूछा।

"नहीं फ़रमाइश नहीं हुई है, इसका मैं तुम्हें येक़ीन दिलाता हूँ।"—सकपकाते हुए चौधरी साहब ने कहा।

मैं ताड़ गया कि कुछ दाल में काला है। "देखो चौधरी साहब, बनो मत, ठीक-ठीक बतला दो। रुपया मुझसे ही लेना है।"—हँसते हुए मैंने कहा।

"भाई, कल कार का 'इन्स्टालमेण्ट' देना है, बस इतनी-सी बात है।"

"आखिर तुम्हें यह क्या सूझी जो तुम कार खरीद बैठे, जब तुम्हारे रोज़ के खर्च ही मुश्किल से चलाए चलते हैं ?"—मैंने पूछा।

"यार, उस दिन फँस ही गए—अब क्या किया जाय।"

"किस दिन ?"

"अच्छा तो जो बात अभी तक किसी को नहीं बतलाई वह तुम्हें बतलानी ही पड़ गई। तो सुनो ! अभी तीन महीने की बात है। भुवन के बड़े भाई आए थे, उनसे मिलने के लिए मैं सुबह उनके बँगले पर पहुँचा। ताँगा मैंने बँगले पर पहुँचते ही छोड़ दिया, क्योंकि काफ़ी लोग इकट्ठा थे और मेरा ख़्याल था कि जल्दी छुट्टी न मिलेगी। मेरा अनुमान ग़लत भी न था। खा-पी कर क़रीब बारह बजे .फुर्सत मिली।

"मुझे एक काम से चौक जाना था। मैंने भुवन से एक ताँगा मँगवाने को कहा तो मालूम हुआ कि नौकर बीमार है। यह सोच कर कि बाहर निकल कर कोई सवारी ले लूंगा, मैं भुवन के बँगले से चल पड़ा। भाई सुरेश, जानते ही हो कि बरसात की धूप कितनी कड़ी होती है। ठीक दोपहर—ज़मीन जल रही थी और खोपड़ी चटकी जा रही थी। फाटक के बाहर आकर मैं एक पेड़ की छाया में खड़ा हो गया और सवारी की प्रतीक्षा करने लगा।

"मैं क़रीब आध घण्टे वहाँ खड़ा रहा, लेकिन कोई ख़ाली ताँगा न निकला। तबीयत परेशान हो गई। मेरा बँगला वहाँ से करीब दो मील की दूरी पर था पैदल चलने के ख़्याल से ही आँखों के आगे अँधेरा छा जाता था, कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या करूँ। अन्त में मैंने यह तय किया कि यदि दस मिनट में कोई सवारी नहीं आती तो जान पर खेल कर घर तक का रास्ता पैदल ही नापूँगा।

"दस मिनट भी हो गए पर सवारी का पता नहीं। अब मैंने चलने के लिए कमर बाँधी। पैर उठाया ही था कि इक्के की घड़घड़ाहट मुझे सुनाई दी। पीछे मुड़कर देखा तो एक ख़ाली इक्का चला आ रहा था।

"मैं रुक गया। सुरेश, सच कहता हूँ कि उस इक्के को देखकर जान में जान आई। लेकिन उस इक्के की बाबत यहाँ कुछ बतला देना आवश्यक होगा। मेरा ऐसा ख़्याल है कि वह इक्का ग़दर के पहले बना होगा, क्योंकि इतनी पुरानी लकड़ी की चीज़ मैंने पहले कभी न देखी थी। पहिए छोटे-छोटे, जिन पर लोहे का हाल चढ़ा हुआ था, धुरे से निकलने की लगातार कोशिश कर रहे थे, लेकिन निकल न पाते थे; क्योंकि लोहे की एक-एक कील उनको रोक रही थी। इसी लिए शायद उन कीलों से लड़ने के समय कभी-कभी एक कर्कश आवाज़ कर देते थे। इक्के की छत बेर-बेर चारों तरफ़ हिल-डुलकर अपने बुढ़ापे को प्रकट कर रही थी। छत के तीन डण्डे तो मौजूद थे, लेकिन चौथे के जवाब

दे देने के कारण बाँस का डण्डा लगाया गया था। बाकी तीन डण्डों में भी काफ़ी मरहम-पट्टी हो चुकी थी। उस इक्के पर एक गद्दा बिछा हुआ था जिसके ऊपर का कपड़ा फट गया था और रुई हवा में उड़ कर दुनिया में घूमने-फिरने की सोच रही थी।

"उस इक्के में जो घोड़ी जुती हुई थी वह क़रीब साढ़े तीन फ़ीट ऊँची, पाँच फ़ीट लम्बी और एक फ़ुट चौड़ी होगी। उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। वह कभी-कभी रुक कर सुस्ताने का प्रयत्न भी कर लेती थी। इक्केवान क़रीब सत्तर वर्ष के बुज़ुर्गवार थे, जिनकी दाढ़ी काफ़ी लम्बी थी और सन की तरह सफ़ेद। कमर झुकी हुई और दाँत नदारद। उनके एक हाथ में चाबुक थी और एक हाथ में घोड़ी की रास। वह उस समय शायद अफ़ीम की पिनक में ऊँघ रहे थे।

"सुरेश! तबीयत तो न हुई कि उस इक्के पर बैठूँ, लेकिन मरता क्या न करता। मैं चलते इक्के पर ही उचक कर बैठ गया। घोड़ी ने अन्दाज़ लिया कि इक्के पर बोझ अधिक हो गया और वह विरोध-रूप में खड़ी हो गई। इक्के के खड़े होने के साथ ही जो झटका लगा तो बड़े मियाँ ने आँखें खोल दीं। एक ही साँस में घोड़ी को मा-बहन की गालियाँ देते हुए चार-पाँच चाबुक फटकार गए। घोड़ी को चलना पड़ा। इसके बाद उन्होंने मुझे देखा।

"बाबू जी सलाम! कहाँ चलना होगा?"

"बस सीधे चले चलो।"—मैंने कहा, क्योंकि मेरा बँगला उसी सड़क पर था।

"थोड़ी दूर चलने के बाद एक ताँगा मेरी दाहिनी ओर से आगे बढ़ा। मैंने देखा कि उस ताँगे पर दो स्त्रियाँ बैठी थीं। उन दोनों को तुम भी जानते हो—प्रभा और कमला। ये दोनों जब मैं यूनिवर्सिटी में था तो मेरे साथ पढ़ती थीं। इधर इन दिनों इन दोनों से मेरी दोस्ती कुछ थोड़ी-सी गहरी हो रही थी। सुरेश, क्या कहूँ, इनको देखते ही मेरा चेहरा पीला पड़ गया, कलेजा धक-से हो गया। 'अगर इन्होंने मुझे इस इक्के पर देख लिया तो?' एकदम मैंने अपना मुँह उधर से फेर लिया।

"लेकिन बदक़िस्मती से मैं ही अकेला उस इक्के पर था। अगर और सवारियाँ होती तो शायद मैं छिप भी जाता। ताँगा तेज़ी के साथ बढ़ा जा रहा था, लेकिन एकाएक धीमा हो गया। मैं उस समय पीछे देख रहा था। मैंने सोचा कि ताँगा चाहे लाख धीमा किया जाय, मेरे इक्के को नहीं पा सकता। यह सोच कर मैंने सन्तोष की गहरी साँस ली। लेकिन एकएक ताँगा रुक गया और प्रभा और कमला दोनों ही ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"सुरेश, तुम नहीं जान सकते, उस वक़्त मेरी क्या हालत थी। लज्जा और क्रोध से मेरे मुख का रङ्ग बेर-बेर बदल रहा था। दिल में तरह-तरह के ख़्याल आ रहे थे, कभी तबीयत होती थी कि इस इक्केवाले की जान ले लूँ, कभी अपनी ही जान लेने की सोचता था। फिर कभी उन दोनों का गला घोंट देने की तबीयत होती थी।

लेकिन मैंने अपना मुँह सामने न किया, न किया। मैंने भी इक्के-वाले से कहा—'इक्का रोक दो।' लेकिन काफ़ी देर तक ताँगे ने चलने का नाम न लिया तो मुझे मजबूरन इक्केवाले से कहना पड़ा—'इक्का मोड़ लो।' और मैं जहां से चला था वहीं लौट आया।

"इतना अपमानित मैं जीवन में कभी न हुआ था। मैंने तय कर लिया कि मैं इन दोनों को दिखला दूँगा कि मेरे पास कार है और इस प्रकार मैं अपने आत्म-सम्मान पर लगे हुए धब्बे को धो दूँगा। उसी दिन शाम को मैंने यह कार ले ली। पास में रुपया न था इस लिए 'इन्स्टालमेन्ट सिस्टम' पर यह कार लेनी पड़ी"

मैं हँस पड़ा। "अच्छा! तो इस तरह से कार आई। ख़ैर कार तो आ गई।"

चौधरी विश्वम्भरसहाय ने चाय का दूसरा प्याला बनाते हुए कहा—"यार सुरेश! यह कार मैं नहीं रख सकता। अपना ख़र्च चलाना ही मुश्किल पड़ रहा है, कार तो एक बला पीछे लगी। लेकिन क्या करूँ, मजबूर हूँ। जिस दिन से कार ली है, उस दिन से उन दोनों की शकल ही नहीं दिखलाई दी। आज दो महीने से दिन-रात कार पर चक्कर लगा रहा हूँ। शहर की हर एक सड़क छान डाली और उनके मकान के तो न जाने कितने चक्कर लगा डाले, सिर्फ़ इस लिए कि वे मुझे कार पर कहीं देख लें, लेकिन न जाने कहाँ ग़ायब हो गईं कि उनका पता ही नहीं लगता। जिस दिन उन्होंने यह कार देखी उसके दो-चार दिन बाद ही मैं यह कार बेच दूँगा। बाबा मैं कार से बाज़ आया। अच्छा,अब 'इन्स्टालमेंट' के लिए रुपया तो निकालो।"